आर्य सिद्धान्त तथा सिख गुरु

लेखक

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

संस्थापक दयानन्द मठ

दीनानगर (गुरुदासपुर)

सम्पादक

डॉ. विवेक आर्य

प्रकाशक

हितकारी प्रकाशन समिति

हिण्डौन सिटी (राज.)

आर्य सिद्धान्त तथा सिख गुरु

प्रकाशक : **हितकारी प्रकाशन समिति**

व्यानिया पाड़ा, द्वारा 'अभ्युदय' भवन,

अग्रसेन कला महाविद्यालय मार्ग, स्टेशन रोड,

हिण्डौन सिटी, (राज.)—322 230

चलभाष : 7014248035, 941434072

Email-aryaprabhakar@yahoo.com

प्राप्ति स्थान : **1. श्री संजय कुमार**

buyvedicsahitya@gmail.com

चलभाष : 7015591564(whattsapp only)

2. श्री गणेशदास—गरिमा गोयल

वैदिक साहित्य प्रतिष्ठान, 4058—59

के सामने, नया बाजार, दिल्ली—110 006

व्यवस्थापक—9329125396

श्री गणेशदास— 9212458841

3. श्री सहदेव समर्पित, सम्पादक

शांतिधर्मी मासिक पत्रिका

753/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक,

जीन्द (हरियाणा) — 126102

चलभाष : 9416253826, 9996338552

4. वैदिक प्रकाशन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

15 हनुमान रोड, नई दिल्ली—110001

दूरभाष : 011—23360150

संस्करण : 2020

मूल्य : रुपये

शब्द संयोजन : **आर्य लेजर प्रिंट्र्स** , हिण्डौन सिटी (राजस्थान)

मुद्रक : **राधा प्रेस** 38/2/16, साइट 4, साहिबाबाद (उ.प्र.)

आर्य सिद्धान्त तथा सिख गुरु

विषय सूची

सम्पादकीय

–डॉ. विवेक आर्य,
शिशु रोग विशेषज्ञ, दिल्ली
drvivekary@yahoo.com

Join us at facebook.com/arya.samaj

(आर्य समाज के सबसे बड़ी संख्या वाले फेसबुक पेज से जुड़िये)

द्वितीयावृत्ति की भूमिका

प्रथम यह पुस्तक आर्य सिद्धान्त अते सिख गुरु' नाम से छिपी थी तब यह पुस्तक मुरुमुखी लिपि और पंजाबी भाषा में थी। उसका कारण यह था– सिख प्रायः उरदू , फारसी अधिक पढ़ते थं कितने ही सिखों ने ज्ञानी आदिक पंजाबी कीपरीक्षाएं उरदूलिपि में पढ़ी थी, उसके पश्चात् वह गुरुमुखीलिपि पढ़ते थे। अकारण ही उनको हिन्दीभीषा और देवनागरी लिपि से द्वेष था। इस अवस्था में उरदू में छापना में न चाहता था हिन्दी सिख न पढ़ते थें मध्यमार्ग यही था, कि पुस्तक गुरुमुखी लिपि में छापी जाए।

अब वह अवस्था नहीं है। अब देवनागरी लिपि और हिन्दी राष्ट्रीय भाषा है। इसलिये अब देवनागरी लिपि और हिन्दी में छापना ठीक जान कर ऐसा किया गया है।

उस समय भाषा पंजाबी थी, इस बार भाषा ससरल हिन्दी और पंजाबी दोनों हैं। कुछ पाठ तो उन पुस्तकों के है, जो पंजाबी भाषा में है। वह पाठ पंजाबी में ही छापे है, हिन्दी सरल इसलिये लिखी है कि पंजाबबी में यह अभी नई ही है। यह सत्य है, आर्य समाज ने इसका प्रचार किया है, तो भी उत्तरप्रदेश, बिहार राजस्थानादि प्रान्तोवत् पंजाब की भाषा यह नही बनी है।

पाठ कुछ बढ़ाये है और घटाये भी है, परन्तु विशेष अंतर नहीं है। सामान्य रूप से पाठ वही है।

इस बार एक प्रकरण अधिक है, प्रथम 21 प्रकरण थं अब 22 हैं। पुर्नजन्म प्रथम न था। अब वह भी लिख दिया है।

प्रथम आवृत्ति विरजानन्द वैदिक संस्थान द्वारा उसके अध्यक्ष श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने 1945 में छापी थी, उनमें से कुछ तो पाठको तक पहुंच चुकी थी शेष सब पंजाब विभाग समय गुरुदत्त भवन में विभाजन कीक भेंट हो गई। इस कारण इस द्वितीयावृत्त का यत्नकरना पड़ा।

यह स्वाभाविक बात है कि मनुष्य भूलने वाला है। ईश्वर ही भीूल से रहित है। ''यःसर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।''

मुंडक1/9 'अभुल गुरु करतार' पाठ भी यही बतलाते हैं। इस

लिये सर्वसज्जनों से नम्र निवेदन है, कि यदि किसी स्थल में भूल ज्ञात हो तो लिखने का कष्ट करें, ताकि उस पर विचार करके उस भूल का भूल की अवस्था में सुधार कर लिया जाय–– अर्थात् उसको ठीक कर लिया जाय।

इस पुस्तक में मैने खंडन किसी का नही किया है। प्रत्येक सिद्धान्त जो ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा था, उसके पोषक अथवा उस सिद्धान्त पर जो गुरु महाराज ने उपदेश लिखे हैं, उनका संग्रह कर दिया है। यदि मुझे कोई शब्द उसके विपरीत मिला, तो उसे भी लिख दिया है। ताकि पाठक अपनी इच्छानुसार विचार के स्वयं निश्चय कर सकें।

कुछ ऐसी भी है जिनको इस समय सिख नहीं मानते हैं। मुझे आग्रह नहीं, कि सिख उन विषयों पर जो विचार मान ही लें। मैं तो इतना ही कह सकता हूं। कि मुझे जो सिद्धान्त सत्य प्रतीत हुए मैने वही लिखे हैं– बस और वह मेरे विचारों को भी जान लें। इत्योम्।

1 भाद्रपद सम्वत् 2009 वि. स्वतंत्रानन्द
तदनुसार 16 अगस्त 1952 ई. दयानन्द मठ
दीनानगर

भूमिका

इस समय कई सिख लिखते और कहते है, कि सिख पंथ का वैदिक धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार कुछ वैदिक धर्मी भी है, जो मानते है, कि सिख पंथ एक पृथक ही सम्प्रदाय हैं। यह दोनों विचार ठीक नहीं है। सिख पंथ वैदिक धर्म के उतना ही समीप है, जितने अन्य सम्प्रदाय है।

यह विचार कई बार उत्नन्न हुये थे। कि कोई ऐसा पुस्तक लिखा जाय जिसमें वैदिक सिद्धान्त तथ श्री गुरु ग्रन्थ जी के शब्द साथ साथ लिखे जाये। कई लेखकों से ऐसा करने की प्रार्थना की, उनमें से किसी ने यह कह कर टाल दिया कि कोई लाभ नहीं, किसी ने कहा समय नहीं और कई चुप ही रहे। कई महाशयों ने जेहड़ बोले ओही कुडा खोले' के अनुसार कहा कि आप ही लिखें।

कई बार विचार भी हुआ कि यदि कोई और नहीं लिखता तो तू ही लिख। क्योकि न करने से कुछ करना अच्छा ही है। परन्तु अपनी अयोग्यताऔर पुस्तक लिखने का अनभ्यास, न लिखने की प्रेरण करता रहा। इनके साथ साथ आर्य समाज और सभा के काम देखकर तो कहना पड़ता था। बालक ढ़ाई चर्ष का और साढ़साती साढ़े सात वर्ष की।'' अतः समय निकालना कठिन सा ही था।

इसी विचार में कई वर्ष बीत गये। सभा के कामों से कुछ अवकाश भी मिल गया, किन्तु समाज के काम अभी पीछा न छोड़ते थे। पंजाब में एके कहावत है''जे परमेश्वर करना लोड़े,सौ सबब एक पल विच जोड़े।''इसी प्रकार परमात्मा ने अवकाश का ढंग बना दिया।

मैं और स्वामी वेदानन्द तीथ्र जी रायकोट गुरुकुल का उत्वस समाप्त करके कतिव गिरधर रायजी की जन्म भूमि और वंशावलि आदि का पता लेने दसूहा गये। लौट कर जब जालन्धर स्टेशन पर आये, तब एक आर्य समाजी ने 'प्रताप' समाचार पत्र लाकर अंगुली से निर्देश करके एक पाठ पढ़ने को कहा। मैंने उसे पढ़ा। उसमें लिख हुआ था –जिला रोहतक

के दौरे के कारण स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के वारण्ट निकले हं। ऐसा सुना है।

उसके पश्चात् वारन्ट की प्रतीक्षा होने लगी और साथ ही आर्य समाज के कामों का चक्र भी चलता रहा। एक बार मैं 19.4.43 को बाहरसे मठ में (दीनानगर) पहुंचा और 22.4.43 को वारण्ट भी आ गए। खान साहब मुम्मद अमीरखां थानेदार दीनानगर वारण्ट लेकर आए। मैं पहले ही प्रतीक्षा में था इसलिण कोई आश्चर्य की बात न थी। मैं उनके साथ चल दिया । मठ से बाहर जाकर पण्डित रामचन्द्र आदि मठ निवासियों को विदा किया। थाने पहुंचकर थानेदेर साहिब तो ठहर गए और 'ढग्ग' मीया मुहम्मद अली हवलदार को सौंप दी। वह मुझे गुरदासपुर ले गए। इस समय लाला भद्रसेन जी ओहरी, लाला देवदत्त जी आदि भी गुरुदत्त जी आदि भी गुरुदासपूर साथ गए। पुलिस का व्यवहार अच्छा था।

सायंकाल लगभग साड़े तीन बजे जेल भेजने की आज्ञा मिल गई। जेल में पहुंचाकर सब साथी लौट आए।

3.5.43 को प्रातःकाल ही एक थानेदारआया, उसके पास आज्ञापत्र था, कि मुझे लाहौर किला में पहुंचा दिया जाय, उसने हथकड़ी लगा रेल में बिछा लाहौर किला में पहुंचा दिया।

10.6.43 तक मैं किले में रहा। वहां की बातें लिखने की आवश्यकता नहीं। उस दिन 10.6.43 को सायं साढे सात बजे किले से बाहर जाने की आज्ञा मिली, साथ ही आज्ञा थी कि 24 घंटे के अन्दर अन्दर दीनानगर पहुंच जाओ, वहां नजरबन्द रहोगे आदि।

दुर्ग से निकलकर महाशय कृष्ण ज के गृह पर आया, वहां अनेक आर्यसमाजी मिले औरअन्य परिचित सज्जन भी मिले।

रात को महाशय कृष्ण जी ने कहा'देवयोग से नजरबन्द तो हो ही गए हो,' वहां बैठे बैठे कोई पुस्तक ही लिख दो। उन्हें उत्तर दिया गया कि यह बात विचारणीय है। 11 जून को प्रातः 6 बजे की गाड़ी से चलककककर 11बजे दीनानगर आ पहुंचा।

यहां आकर सोचने लगा कि इन दिनों में क्या किया जाय, तब महाशय कृष्णजी के शब्द स्मरण हुए, फिर सोचने लगा क्या लिखूं। अन्त में निश्चय हुआ कि श्री गुरु ग्रन्थ जी का पाठ किये दीर्घकाल व्यतीत हो

गया है। उसे पढ़कर गुरुजी का मत और ऋषि दयानन्द जी का उपदेश संग्रह कर दिया जाय।

यह निश्चय हो गया कि तब पुस्तकों का प्रश्न सामने आया। ईश्वर की दया से अमृतसर के स्वतंत्रानन्द नामकएक पुस्कालय ने पुस्तक देने की कृपा की औरयह कार्य लगभग 20 दिन मे पूरा हो गया और आषाढ कृष्ण 14तदनुसार 1.7.43 को पुस्तक देखने और लिखने का कार्यारम्भ करदिया।

पुस्तक पढ़ते समय पता लगा, कि जिस प्रकार ऋषि दयानन्द जी धर्मप्रचार करना चाहते थे और मतमतान्तरों के विरुद्ध थे, उसकी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह जी भी मतों का निषेध करके धर्म का प्रचार करना चाहते थे। इस भांति इस बात में यह दोनों एक ही पथ के पथिक हैं।

आगे मैं उन दोनों के शब्द लिखता हूं——

''जो जो बात सबके सामने माननीय है, उसके मानता अर्थात् जैसेसत्य बोलना सबके सामने अच्छा औरमिथ्या बोलना बुरा है, ऐसेसिद्धान्तो को स्वीकार करता हू, और जा मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े है, उनको मैंप्रसन्न (पसन्द) नहीं करता।, क्योकि इन्ही मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट कर बवसत्य का प्रचार करसबको ऐक्य मत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सबको सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न औरअभिप्राय है।सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिससे सब लाग सहज से धर्म अर्थ कामऔर मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।''

——सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

गुरु गोविन्द सिंह जी विचित्र नाटक में लिखते हैं——

जे कोई होत भयो जग सिआना। तिनतिन अपनो पंथ चलाना।14
परम पुरुष किनहूं नहि पायो। वैर वाद अहंकार बढ़ाओ।15
जिन जिन तनक सिधि को पायो। तिन तिन अपना राह चलाओ।
परमेसर नहि किनहूं पछाना। मम उचारते भयो दिवाना।16
परम तत किनहूं न पछाना। आप आप भीतर उरझाना।17
जे प्रभु परम पुरुष उपजाए। तिन तिन अपने राह चलाए।26

हम इह काज जगत में आए। धर्म हेत गुरुदेव पठाए।
जहां तहां तुम धरम विथारो। इुसट दोखीअन पकर पछारो।42
जे जे भए पहल अवतारा। आप आप तिन जाप उचारा।
प्रभु दोसी कोई न विदारा। धरम करम को राह न डारा।44
स्वांगन में परमेसर न हीं। खोज फिरे सबहं को काही।
अपने मन करमो जिह आना। पार ब्रम्ह को तिनी पछाना।55

——विचित्र नाटक अध्याय 6

ऋषि दयानन्द जी गुरु गोविन्दसिंह जी दोनो ही अपना उद्देश्य धर्म प्रचार मानते है, दोनो ही मत मतान्तरों के बंधन से रहित होने का उपदेश देते है, उभय यही कह रहे हैं कि धर्म का पालन करों। इसलिये देनों धर्म प्रचार में एकक मार्ग गामी हैं।

इन बातों का ध्यान रखकर इस पुस्तक में प्रथम साधारण रूप से सिद्धान्त का वर्णन किया है। श्चात् उसी विषय का सत्यार्थप्रकाश का कुछ पाठ लिखा है। पुनः श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के कुछ शब्द लिखकर कहीं कहीं इसम मुरुगंथ से भी कुछ शब्द लिखे हैं। तदनन्तर कहीं कहीं किसी अन्य प्रतिष्ठित सज्जन का कोई पाठ लिख दिया है ता वह विद्धान्त सहजतासे समझ में आ जाय।

इस पुस्तक के 21 प्रकरण हैं।

1—ईश्वर 2—ईश्वर के नाम 3—साकार—निराकार 4—निगुण—सगुण 5—अवतार 6—मूर्ति—पूजा 7—जीव 8—वेद 9—कर्म 10—यज्ञोपवीत 11—संध्या 12—हवन 13 श्राद्ध 14—अतिथियज्ञ 15—वर्ण 16तीर्थ 17शराब, मांस 18—नमस्कार 19—स्त्री जाति 20—वेष 21—सत्यार्थ प्रकाश का पाठ।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अनेक पुस्तकों से सहायता लेनी पड़ी है। उनमें से कुछ पुस्तक तो महापुरुषों के लिखे हुए हैं औरकुछ पण्डित औरविद्वानों ने लिखे हैं। मैं उनसबका ऋणी हूं इस लिए उनसबका धन्यवाद् करता हूं। यदि वे पुस्तकें मुझे न मिलती तो मैं यह पुस्तक न लिख सकता।

यह साधारण बात है, कि जो उसके लिखने में मुझसे कोई भूल हो गई हो (जीव अन्पज्ञ है और भूलण अंदर सभको' ठी ही है) यदि कोई

सज्जन मुझे मेरी भूल सुझावेगा, तो मैं उस पर विचार अवश्य करूंगा और ठीक होने पर उसे स्वीकार कर आगे को सुधार कर दूंगा।

अंत में महाशय कृष्ण जी जिन्होंने पुस्तक लिखने की प्रेरणा की उनका धन्यवाद् करता हूं और जिस पुस्तकालय ने मुझे सब पुस्तक दिये, उनका धन्यवाद करके भूमिका लिखने से लेखनी को रोकता हूं।

श्रावणशुक्ल पूर्णिमा वि. 2000 स्वतंन्त्रानन्द
(15.8.43) दयानन्द मठ
दीनानगर

1.

ईश्वर

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में सातवां समुल्लास ईश्वर परक लिखा है। उसमें निम्न पाठ मिलता है।

1. प्रश्न—ईश्वर व्यापक है व किसी एक स्थान मे रहता है?

उत्तर—व्यापक है वा किसी एक देश में रहता है? सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्त्रष्टा,सब का धर्ता और प्रलयकर्ता नहीं हो सकता।

प्रश्न— ईश्वर सर्वशक्तिमान् है या नहीं?

उत्तर—है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानतो हो, वैसा नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति पालन प्रलय आदि और सब जीवो के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवसथा करने में किन्चित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण करलेता है।

प्रश्न— जब परमेश्वर के श्रोत्र, नेत्र आदि इद्रियां नहीं है फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है?

उत्तर— अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणेत्यकण्ः स वेति विश्वं न च तसस्ति वेत्ता ताहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्। श्वेताश्वतर 3। 16

परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्ति—रूप हाथ से सब का रचन, ग्रकहण करता, पग नहीं किन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान, चक्षु का गोलक कनहीं परनतु बसको यथावत् दोता, श्रोत् नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अनतःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सबसे श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। योग. 1। 24

जो अविद्याति क्लेश, कुशल अकुशल, इष्ट अनिष्ट ओर मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।

प्रश्न– वेद में ईश्वर अनेक हैं। इस बात को तुम मानते हो वा नहीं?

उत्तर– नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा, जिसे अनेक ईश्वर सिद्ध हों, किन्तु ह तो लिखा हे, कि ईश्वर एक है।

प्रश्न– परमेश्वर सादि है वा अनादि?

उत्तर– अनदि अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो, उसो अनादि कहते हैं। —सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 7

2. न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थे नाप्युच्यते। 16।
न पंचमो न षष्ठः सप्तमों नाप्युच्यते। 17।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। 18।
तमिदं निगतं सहः स एष एक एव वृदेक एव। 20।

—अथर्व. कांड 13। 4

परमेश्वर एक ही है, उससे भिन्न कोई न दूसरा न तीसरा ओर न कोई चौथा परमेश्वर हैं न पांचवां न छठा और न कोई सातवां ईश्वर हैं न आठवां न नवमां और न कोई दशमा ईश्वर है। किन्तु वह सदा एक अद्विितीय ही हे, उससे भिन्न दूसरा ईश्वर कोई भी नहीं।

—द्धग्वेदादि भाष्यभूमिका, ब्रह्मविद्या विषय।

3. ईश्वर, कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त हैं। जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं,जो सव्रज्ञ, निराकर, सव्रव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्व'–शक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कत्र्ा, धर्ता, हर्ता, सब जीवों का कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है। उसी को परमेश्वर मानता हूं।

—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

4. ईश्वर, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो `वल चतन मात्र वस्तु है, तथा जो अद्विितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्य गुण वाला है ओर जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु ओर अजन्मादि हे, जिस का कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन ओर विनाा करना तथा सब जीवों को पाप, पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाना है। उसको ईश्वर कहते हैं।

—आयोद्देश्य रत्न माला

5. 1–सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं। उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2– ईश्वर–सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनलन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधर, सर्वेश्वर, र्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र ओर सृष्टिकर्ता हैं उसी की उपासना करनी योग्य है। —आर्य समाज के नियम

ऋशि दयानन्द जी ईश्वर तथा उसके गुण ऊपरलिखित रूप में मानते हैं। जिसने अधिक देखना हो, उसे उनके पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश का सप्तम समुल्लास पढ़ना चाहिए। आगे गुरु–ग्रंथ मे से वह शब्द लिखता हूं, जो इसी विषय को प्रगट करते हैं।

1. 1 ओं सति नाम कत्र्ा पुरुष रिभउ निरवैर अकालमूर्ति अजूनी मैभं गुरु प्रसादि जपु। आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु।

—जपुजी 1

2. थापिया न जाइ कीता न होइ। आपे आप निरंजन सोइ।

—जपुजी 5

3. तू सदा सलामति निरंकार। —जपुजी 16

4. जिन इह जगत उपाइयां त्रिभवण कर आकार। गुरुमुख चानण जाणीऐ मनसुख मुगध गवार। घट–घट जोत निरंतरी बूझे गुरुमति सार।

—श्री राग महला 1, शब्द 28

5. सोई मौला जिनि जगु मौलिया हरिया कीया संसारो। आब खक जिनि बंध रहाई धन्न सिरजण हारो। —श्री राग महला 1, शब्द 28

6. बाबा अलहु अगम अपार। पाकी नाई पाक थाई सचा परवरदगार।

—श्री रागष्टपदियां 1, म. 1, अष्ट. 1

7. अलाहु अलख अगंम कादरु करणहार करीम। सभ दुनी आवण जावणी मुकामुएक रहीम। —श्री राम महला 1। अष्टपदियां 17। 6

8. क्या उपमा तेरी आखी जाइ। तू सर्वे पूर रहिया लिवलाइ।

—राग आसा महला 1 शब्द 7

9. अलख अपार अगम्म अगोचर ना तिस कालं ना करमा। जाति

अजाति अजोनी संभउ न तिस भाउ न भरमा। 1। चाचे सचियार विटहु कुरयाणु। ना तिस रूप वरन नहीं रेखिया साचै सबद नीसाणु। रहाउ। ना तित मात पिता सुत वंधप ना तिस कामना नारी। अकुल निरंजन अपर परंपर सगली जोति तुमारी। 2। घट–घट अन्तर ब्रह्म लुकाइया घटि–घटि जोति सवाई। 3। –श्री राम महला 1 शब्द 6

10. सभमहि जोति जोति है सोइ। तिसकै चानणु–सभ महि चानणु होइ। –राग धनासरी महला 1 शब्द 9

11. हका कबीर करीम तू बे ऐब परवरदगार।

– राग तिलंग महला 1 शब्द 1

12. जिनि जीउ पिण्ड दित्ता तिस चेतिह नाहि। मड़ी मसाणी मूड़ै जोगु नाहि। –राग वसन्त अष्टपदियां महला 1 अष्टपदी 5 पद 9

13. एको रब रहिया सब ठाई। अपर न दीसै किसु पूज चढ़ाई।

–राग प्रभाती अष्ट पयिां महजला 1 अष्टपदी 6 पद 1

14. भुलण विच कीया सभ कोई करता आप न भुले।

–प्रभाती अष्टपदिया महला 1 अष्ट 04, 8

15. घर होंद पुरुष न पछाणिया अभिमान मुठे अहंकार।

–श्री राग महला 3 शब्द 53

16. हरि की तुम सेवा करहु दूजी सेवा करहु न कोइ जी।

–श्री राग महला 3 शब्द 4

17. सभ किछ सुणदा बेखदा क्यों मुकर पइआजाइ।

– श्री राग महला 3 शब्द 56

18. मेरा प्रभु निरमल अगम अपारा। बिन तकड़ी तोले संसारा।

–राग माझ, अष्टपदियां महला 3 अष्टपदी 3 पद 1

19. मेरा प्रभु भरपूर रहिया सभ थाई।

–राग माझ महला 3 शब्द 28

20. तूं पारब्रह्म बेअन्त स्वामी तेरी कुदरति कहण न जाइ।

–राग आसा छंत महला 3 छंत 7

21. सदा सदा सो सविऐ जो सभ महि रहे समाइ। अवर दूजा क्यों सेविऐ जन्मेते मरजाइ। –गुजरी की वार महला 3 वार 2

22. तूं पार ब्रह्म बेअन्तु बेअन्तु जी तेरे क्या गुण आख बखाणा।

–राग आसा महला 4 सो पुरुष

23. सतिगुरु मेरा सदा सदा न आवे न जाइ। ओह अविनासी पुरुष है सभ महि रहिया समाइ।

–राम सूही अष्टमदियां महला 4 अष्टपदी 11 पद 13

24. पौड़ी। हरि जल थल महियल भरपूर दूजा नाहि कोइ। हरि आप बहि करे नियाउ कूडियार सभ मार कढ़ोइ।

–श्री राग की वार महला 4 वार 16

25. जहि जहि देखा तह तह स्वामी। तूं घट घट रविया अन्तरयामी।

–राग माझ महला 4 शब्द 7

26. पारब्रह्म अपरंपर स्वामी। सगल घटा के अन्तर्यामी।

–राग गौड़ी महला 5 शब्द 133

27. पार ब्राह्म का अन्त न पार। कौन करे ताका बीचार।

–राग गौड़ी अष्टपदिया महला 5 अष्टपदि 4 पद 8

28.0 सुख निधाान प्रभु एक है अविनाशी सुण्यिा। जल थल महिअल पूरिया घट घट हरि भणिया।

–राग गौड़ीबार महला 5 वार 7 पौड़ी

29. श्लोक। वासुदेव सर्वत्र मैं ऊन न कतहूं ठाइ। अन्तर बाहर संग है नानक काइ दुराइ। –राग गौड़ी बावन अखरी महला 5 शब्द 46

30त्र. हे अचुत है पार ब्रह्म अवनिासी अधनास। हे पूरन हे सर्वमै दुःख भंजन गुणतास। हे संगी हे निरंकार हे निर्गुण सभ टेक। हे गोविन्द हे गुण निधन जाके सदा विवेक। हे अरंपर हरि हहिभि होवनहार। हे सन्तां के सदा संग निधारा आधार। –राग गौड़ी बावन अखरी महला 5 शब्द 55

31. तुध रूप न रेखिया जति तूं वरना बाहरा। ए माणस जाणहि दूर तूं पुरुष अनन्दी अनन्त सभ जाति समाहरा। तूं सभ देवा महि देव विधाते नर हरा। क्या आराधे जिहवा इक तूं अविनासी अपरंपरा।

–राग मारू डखणे महला 5 शब्द 5

32. समल वनस्पति महि वेसन्तु सग दुध महि घीया। ऊच नीच महिं जोति समाणी घट घट माधो जीया। सन्तहु घट घट रहिया समाहिओ। पुरन पूर रहिओ सव्र महि जल थल रमिइया आहियो। सर्व निवासी सदा अलेपा सभ महि रहिया समाइयो।

—राग सोरठ महला 5 शब्द 29

33. जिसु रूप न रेखिया कुल नहीं जाति। पूरन पूर रहिया दिनुराती। —राग मारू सोलहे महला 5। 14। 6

34. आदि पूरन मधि पूरन अन्ति पूरन परमेश्वरः। सिमरंति सन्त सर्वत्र रमणं नानक अघ नासन जगदीसुरः।

—राग जैतसरी ार महला 5 वार 1

35. अकुल निरंजन पुरुष अगम अपारिए। सचो सचा सचु च निहारिए। —राग गुजरी वार महला 5 वार 1

36. जह देखउ तह संग एको रब रहिया। घट घट वासी आपि विरले किनै लहिया। जल थल महि अलपूर पूरन कीट हसत समानिया। आदि अंते मध्य सोई गुरू प्रसादी जानिया।

—राग आसा छन्त महला 5। छन्त 9

37. काहेरे वन खोजने जाई। सर्व निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई। 1। पुहप मधि जिउ वासु वसतु है मुकर माहि जैसे छाई। तैसे ही हरि बसे निरन्तर घट ही खोजहु भाई। 1। बाहर भीतर एको जानहु इह गुरु ज्ञान बताइ। —राग धनासरी महला 9 शब्द 1

38. जा को जोगी खोजत हारे पाइओ नाहि तिहि पारा। सो स्वामी तुम निकट पछानो रूप रेखते नियारा।

—राग जैतसरी महला 9 शब्द 3

39. सो साहिब रहिया भरपूर। सदा संग नाहीं हर दूर।

—राग गौड़ी कबीर जी शब्द 38

40. परमादि पुरुष मनोपमं सत्यादि भव रतं। परमद्भुत पर कृति परं जदिचित सर्वगत। —राग गुजरी, जैदेव जी

41. परवरदगार अपार अगम वे अन्त तूं।

—शेख फरीद श्लोक 19

42. परवरदगार अपार अगम बे अन्त तूं।

—राग आशा शेख फरीद

43. जल थल पूर रहे प्रभु स्वामी। जब पेखउ तत अन्तर्यामी।

—राग गौड़ी कबीर जी शब्द 40

44. कबीर मुल्लां मुनारे क्या चढहि साईं न वहरा होइ। जां कारन

तू वांग देहि दिल ही भीतर जोइ। —कबीर जी श्लोक 184

आगे कुछ पाठ श्री दसम ग्रंथ जी के भी लिखते हैं।

1. चक्र हिन अरु वरन जात अरु पाति नहन जिहि।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कह न सकत किहि।
अचल मूर्ति अनभउ प्रकाश अमितोज कहिजै।
कोट इन्द्र इन्द्राणि सह साहाण गणि जै।
त्रिभवन महीप सुर नर असुर नेतनेत वणत्रिण कहत।
त्व सर्वनाम कथे कवन कर्म नाम वर्णत सुमत।1। जासाहिब।

2. आदि रूप अनादि मूरति अजोन पुरुष अपार।
सरबमान त्रिमान देव अभेव आदि उदार।
सर्व पालक सर्व घालक सर्वको पुन काल।
जत्र तत्र विराजह अविधुत रूप वसाल।। 79।। जाप साहिब

3. लोक चौदह के विषै जग जाप ही जिहि जाप।
आदि देव अनादि मूरति थापिओ जिहि थाप।
परम रूप पुनीत मूरति पूरन पुरुष अपार।
सरव विश्व रचियो स्वंभव गढ़न भंजन हार। 83। जाप साहिब

4. अलख रूप अछै (अक्षय) अनभेखा।
राग रंग जिहि रूप न रेखा।।
वरन चिह्न सब हूं ते नियारा।
आदि पुरुष अद्वैय अविकारा। 3। अकाल उस्तुति

5. दीनन की प्रतिपाल करे, सनत उवार गनीम न गारे।
पच्छ पसू नग नाग नराधप सर्वसमय सबको प्रपिारे।
पोषत है जल मे। थल में पल मैं कल के नहीं कर्म विचारे।
दीनदयाल दयानिधि दोश न देखत है पर देत न हारे।

—243 अकाल उस्तुति

6. आदि अनन्त अगाध अद्वैष सभूत, भविष्य भवान अभै है।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न रोग न सोग न भोग न मैं है।
देह विहीन सनेह सभो जन नेह विरक्त अगेह अछै है।
जानको देत अजान को देत जमीन को देत जमान कोग दे है।
काहे को डोलत है तुमरी सुधि सुन्दर श्री पद्मापति लै है।

—243 अकाल उस्तुति

7. सतो सदैव सरूप सत व्रत आदि अनादि अगाध अजै है।
दान दया दत संयम नेम जत व्रत सील सुव्रत अवै है।
आदि अनील अनादि अनाहत आप वेअन्त अद्वैष अभै है।
रूप अरूप अरेख जगरदन दीनदयाल कृपालू भए हैं। 2।
8. आदि अद्वैव अभेष महा प्रभ सत सरूप सुजोति प्रकासी।
पूर रहियो सब ही घअ कै पट नत सभाधि सुभाव प्रणासी।
आदि जुगादि जगादि तुही प्रभू फैल रहियो सब अन्तर वासी।
दनी दयाल कृपालू कृपा कर आदि अयोनि अजै अविनासी।
। 3। सवैये।
9. अचत आदि अनील अनाहद, सत्त सरूप सदैव बखानै।
आदि अजोनि अजाइ जरा विनु, परम पुनीत परंपर मानै।
सिद्ध संभु प्रसिद्ध सबै जग एक ही ठौर अनेक बखाने।
रे मन रं कलंक बिना हरि, तै किह कारण ते न पछाने। 5।
10. अच्छर आदि अनील अनाहद सत सदैव तुही करतारा।
जीव जिते जल मैं थल मैं सब के सद पेट को पोषन हारा।
वेद पुरान, कुरान दुहूं मिल भांति अनेक विचार विचारा।
और जहान निदान कछु नहिए सुबहान तुही सिरदारा। 6।
सवैये पातशाही 10।

इसी विषय के अनेक शब्द श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में हैं। मैं अधिक लिखने से संकोच करता हूं। जिसने अधिक देखने हों, वह वही देख ले। इससे पता लगता हें इस विषय में ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त ओर सिख गुरुवों का मत समान ही है।

— + —

2.

ईश्वर के नाम

ऋषि दयानन्द जी ने सत्याथ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के अनेक नाम लिखे हैं। उस नाम के ईश्वर विषयक अर्थ भी लिखे हैं। उनमें से कुछ नाम लिखता हूं—

ओ३म्। यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। परमश्ेवर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं जैसे लोक में दरिद्री आदि के घनपति आदि नम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ, कि कहीं गोणिक कहीं कार्मिक ओरकहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक है।

1. रक्षा रकने से — ओ३म्।
2. आकाशवत् व्यापक होने से —खम्।
3. सबसे बड़ा होने से —ब्रह्म। ईश्वर का नाम है।
4. स्वप्रकाश होने से—अग्नि।
5. विज्ञान स्वरूप होने से—मनु।
6. सबका पालन करने से—प्रजापति।
7. परमैश्वर्यवान् होने से—इन्द्र।
8. सब जगत् के बनाने से—ब्रह्मा।
9. सर्वत्र व्यापक होने से—विष्णु।
10. दुष्टों को दण्ड दे के रुलोने से—रुद्र।
11. मंगलमय और सबका कल्याणकर्त्ता होने से—शिव।
12. जिसमें सब प्राणी होते हैं, इसलिये ईश्वर का नाम भूमि।
13. जिसका सत्यविचार शीलज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है। इससे उस परमात्मा का नाम—ईश्वर।
14. जिसका विनाश कभी न हो, उसी ईश्वर की आदित्य संज्ञा है।
15. जो बससे स्नेह करके और सबको प्रीति करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम—मित्र।
16. जिस लिये परमेश्वर सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये उसका नाम—वरुण।
17. जिसके तुल्य कोई भी न हो उसका नाम—परमेश्वर।

18. जो सब जगत् की उत्पत्ति करता हे इसलिये उस परमेश्वर का नाम—सविता।

19. जो पनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, इससे उस परमेश्वर का नाम—कुबेर।

20. जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करने वाला है। इस लिये उस परमेश्वर का नाम पृथिवी।

21. जो सब ओर से जगत् का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्मा का नाम—आकाश।

22. जिसमेंसब आकाशादि भूत बसते हैं, जो सबमे वास करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम—वसु।

23. जो आनन्द स्वरूप और सबको आनन्द देने वाला है इसलिये ईश्वर का नाम चन्द्र।

24. जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि—मुनियों का पूज्य था, है ओर होगा, इसे उस परमात्मा का नाम—यज्ञ।

25. जो सबाक रक्षक। जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता हे, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता हे इससे उसका नाम पिता है।

26. जैसे पूर्ण कृपा युक्त जननी अपने सन्तानों ाक सुख आर उन्नति चाहती है वैसे परमश्ेवर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इससे परमेश्वर का नाम माता है।

27. जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने हारा हे इससे उस ईश्वर का नाम गणेश वा गणपति है।

28 जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता ओर सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिये परमात्मा का नाम, यम।

29. जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है। इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'काल'।

30 जो उत्पत्ति ओर प्रलय से शेष अर्थात् बच रहता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम शेष।

प्रश्न— मित्रादि नामों से सख्त्राा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध

व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिए।

उत्तर— यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं, क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही अन्य का शत्रु है और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इससे ुख्ययार्थ मे ंसखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता, किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु ओर न किसाी से उदासीन है। इसेस भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता, इसलिये परमात्मा ही का ग्रहण यहां होता है। हां, गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से मुह्रदादि मनुष्यों का अहण होता है।

'जहां जिसका ग्रहण करना उचित हो वहां उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये।' प्रथम समुल्लास के अन्त में ऋषि ने लिखा है :—

''ये सौ नाम परमेश्वर के लिये है।। परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम है, क्योंकि जैसे परमात्मा के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम भी है। उनमें से प्रत्येक गण, कर्म और स्वभाव का एक—एक नाम है। इससे ये मेरे लिखेनाम समुद्र के सामने विन्दुवत् हैं।

—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 1।

आगे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में ओंकार नाम वाले पाठ लिखता हूं।

1. हरि जीउ सदा ध्याइ तूं गुरुमुख एकंकार।

—श्री राम महला 3 शब्द 42

2. अनिक भांति होइ पसरिया नानक एकंकार।

—रागगौड़ी थिति महला 5 शब्द 1

3. एक एकंकार प्रभु करउ वन्दना ध्याइ।

—राग गौड़ी थिति महला 5 शब्द 1

4. सफल जन्म होइआ मिल साधु एकंकार ध्याए राम।

—रागसूही छन्त महला 5 शब्द 8

5. एकंकार एक पसारा एके अपरअपारा।

—राग विलावल महला 5 शब्द 87

6. ओंकार शबद उधरे। ओंकार गुरमुख तरे।
ओनम अखर सुणहु बीचार। ओनम अखर त्रि.भवन सार।

—रागरामकली महला 1 दखणी ओंकार शब्द 1

7. 1 ओं सतिनाम। —जपुजी 1

जिस भांति सत्यार्थ प्रकाश में शब्दार्थ करके ईश्वर के अनेक नाम लिखे हैं उसी प्रकार श्री गुरुगोविन्द सिंह जी ने दसम ग्रन्थ् में लिखा है। वह इस प्रकार है—

1. प्रण्वो आदि एंकंकार। ज थल महियल कियो पसारा।
2. जो चौबीस अवतार कहए। तिन भी तुम प्रभ तनिक न पाए।
सब ही जग भ्रमे भवरायम्। तांते नाम बेअन्त कहायम्।
3. सब ही छलत न आप छलाया। तांते छलिया नाम कहाया।
4. सन्तन दुखी देख अकलावे। दीनबन्धु तांते कहिलावे।
5. अन्त करत सब जग को काला। नाम काल तांते जग डाला।
6. समय सन्त पर होत सहाई। तांते संज्ञा मीत सुनाई।
7. निरख दीन पर होत दयारा। दीनबन्धु हम तवे विचारा।
8. सन्तन पर करुण रस ढरही। करुणानिधि जब तवे उचरही।
9. संकट हरन साधवन सदा। संकटहरण नाम भयो तदा।
10. दुःखदाहित सन्तन के आयो। दुःखदाहन प्रभु तदन कहायो।
11. रहा अनन्त अन्त नहीं पायो। तांते नाम विअन्त कहायो।
12. जग मों रूप सभन को धरता। यांते नाम बखाने करता।
13. किनहीं कहूं न ताहिं लखाये। इह कर नाम अलख कहायो।
14. जोनि जगत् में कबहूं न आया। यांते सभों अजोनि बताया।
15. ब्रह्मादिक सब ही पचहारे। विशन महेश्वर कौन विचारे।
16. सदा अभेख अभेखी रहई। तांते जगत! अभेखी कहई।
17. अलख रूप किनहूं नहिं जाना। तिहिकर जात अलेख बखाना।
18. रूप अनूप सरूप अपारा। भेख अभेख सभन ते नियारा।
दायक सभी अजाची सभते। जान लियो करता हम तबते।

— अकाल उस्तुति पादशाही 10 चौबीस अवतार 7.16

आगे पौराणिक नाम लिखता हूं। यथा राम, श्रीधर, गोविन्द आदि—

1. ववै वासुदेव परमेसुर वेखन कउ जिन वेस किया।
—राग आसा महला 1 पटी 32।
2. घट घट रव रहिया बनवारी।
—राग सोरठ महला 1 शब्द 8

3. गोविन्द ऊजल ऊजल हंसा।
—राग माझ महला 3 अष्टपदिया, अष्टपदि 21।1
4. जय गोविन्द गोविन्द ध्याइऐ सभको दान देई प्रभ ओहे।
—राग गुजरी महला 4 शब्द 2
5. उवरत राजा राम की सरणी।
—राग गौड़ी महला 5 शब्द 162।4
6. आराध श्रीधर सफल मूर्ति करण कारण जोग।
—राग गुजरी महला 5 शब्द 31।
7. अचुत पारब्रह्म परमेसुर अन्तर्यामी। मधुसूदन दामोदर स्वामी।
ऋषिकेस गोवरधन धरी मुरली मनोहर हरिरंगा।। 1
मोहन माधव कृष्ण मुरारे। जगदीसुर हरि जीउ असुर संघारे
जगजीवन अविनासी ठाकुर घट घट वासी है संगा।। 2
धरणीधर ईस नरधिं नारायण। दाड़ा अग्रे पृथिमी धराइण
बावन रूप किया तुध करने सभ ही सेती है चंगा।। 3
स्त्री रामचन्द्र जिस रूप न रेखिया। वनवाली चक्रपाणि दरस
अनूपिया। सहस नेत्र मूरत है सहसा इकु दाता सभ है मंगा।। 4
भगत वछल अनाथहि नाथे। गोपीनाथ सल है साथे।
वासुदेव निरंजन दाते वरण न साकउ गुण अंगा।। 5
मुकुन्द मनोहर लछमी नारायण। द्रोपदि लजा निवार उधारण।
कमला कन्त करहि कन्तूहल आनद विनोदी निहसंगा।। 6
अमोघ दरसन अजूनी संभउ। अकाल मूरति जिस कदे नाहीं खउ।
अविनासी अविगत अगोचर सभ किछु तुझ ही है लगा।। 7
स्त्रीरंग बैकुण्ठ के वासी। मछ कच्छ कूरम आज्ञा औतरासी।
केसव चलत करत निराले कीता लोड़े सो होइगा।। 8
निराहारी निरवैर समाइयां । धार खेल चतुरभुज कहाइया।
सायल सुन्दर रूप वणावहि वेणु सुनत सभ मोहिगा।। 9
वनमाला विभूषण कमलनैन। सुन्दर कुण्डल मुकट वेन।
संख चक्र गदा है धारी महा सारथी सत संगा।। 10
पीत पितम्बर त्रिभवन धणी। जगन्नाथ गोपाल मुख भणी।
सारंगधर भगवान वीठला मैं गणत न आवे सरवंगा।। 11

निहकंटक निहकेवल कहिऐ। धनंजय जल–थल है महिऐ।
मृतलोक पइयाल समीपत अस्थिर थान जिस है अभगा।। 12
पतित पावन दुःख भय भंजन। अहंकार निवारण है भव खंडन।
भगती तोषित दीन कृपाला गुणे न कित ही है भिगा।। 13
निरंकार अछल अडोले। जोति सरूपी सभ जग मौले।
सो मिले जिस आप मिलाए आपहु कोइ न पावैगा।। 14
आपे गोपी आपे काना। आपे गऊ चरावे वाना।
आप उपावहि आप खपावहि तुध लेप नहीं इक तिलरंगा।। 15
एक जीह गुण कथन बखाने। सहस फणी सेस अन्त न जाने।
नवतन नाम जपै दिन राती इक गुण नाही प्रभ कहि संगा।। 16
ओट गही जगतपिन सरणइया। भ्य भयानक जमदूत दुतर है
माइया। होह कृपाल इच्छा कर राखहु साधु सन्तन के संग संगा। 17
दृष्टिमान है सगल मिथैना। इक मांगउ दान गोविन्द सन्तरेना।
मसतक लाइ परमपद पावहु जिस प्राप्त सो पावेगा।। 18
कृतम नाम कथे तेरे जिहवा। सत् ाम तेरा परा पूर्वला।
कहु नानक भगत पए सरणाई देह दरस मन रंग लगा।। 20

–राग मारु सोहले महला 5 शब्द 11

विष्णु सहस्र केसमान इस शब्द में नेक नाम हैं और प्रायः विष्णु के ही हैं।

8. गुन गोविन्द गाइयों नहीं जन्म आकारथ कीन।

–श्लोक महला 9 श्लोक 1

9. कह नानक नर वावरे क्यों न भजें भगवान।

–श्लोक महला 9 श्लोक 4

10. कह नानक सुनरे मना सिमरत काह न राम।

–श्लोक महला 9 श्लोक 8

11. कोटन में नानक कोऊ नारायण जिह चीत।

–श्लोक महला 9 शलोक 24

12. कह नानक इस विपत में टेक एक रघुनाथ।

–श्लोक महला 9 श्लोक 55

13. राम नाम उर महि गहिओ जाके सम नहीं कोइ।

–श्लोक हला 9 श्लोक 57

14. अब मो कउ भए राजा राम सहाई।

–राग गौड़ी कबीर जी शब्द 57

15. मुकंद मुकंद जपहु संसार। –राग गौड रविदास शब्द1

16. मोकउ वांह देहु वांह देह वीठला।

–राग वसंत नामदेव शब्द 2

इस भांति श्री गुरुग्रन्थ साहिब ओर दसमग्रंथ जी में दोनों प्रकार के नाम हैं अर्थात् गौणिक तथा कार्मिक हैं ओर पौराणिक भी हैं। मैंने उनमें से कुछ लिखे हैं। प्रायः पौराणिक भावनायुक्त पाठ मिलते हैं।

– + –

3.

साकार–निराकार

साकार शब्द के अर्थ हैं, आकार वाला। निराकार शब्द के अर्थ हैं, आकार रहित। बाह्य इन्द्रियां पांच हैं। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण। श्रोत्र से शब्द, शब्दत्व आदि का ग्रहण हाता है। त्वचा से स्पर्श, स्पर्श वाला द्रव्य ओर स्पर्शत्व आदि का ज्ञान होता है। नेत्र से रूपादिगुण ओर रूपवान् पदार्थ तथा रूपत्व आदि का बोध होता है। रसना से रस और रसत्व आदि का ाक्षात्कार होता है। घ्राण से गन्ध ओर गन्धत्व आदि का प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार श्रोत्र, रसना और घ्राण से गुण का ग्रहण होता है गुणी का नहीं और त्वचा तथा नेत्र से गुण गुणी दोनों का ग्रहण होताहै। शास्त्र में यह भी विवाद है, वायु त्वाच प्रत्यक्ष है वा अनुमेय है, किन्तु इस समय इस पर विचार नहीं करना है। हम मान लेते हैं, वायु का त्वाच प्रत्यक्ष है।

परमात्मा द्रव्य है, और द्रव्य का प्रत्यक्ष त्वचा और चक्षु से ही होता है। अब प्रश्न है, क्या ईश्वर का प्रत्यक्ष इन इन्द्रियों से होता है वा नहीं। यदि होता है, तब तो ईश्वर साकार है। यदि नहीं होता, तो परमेश्वर निराकार है। यह निर्णीत सिद्धांत है।

इस विषय पर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में विचार किया है इसलिये प्रथम उसे लिखता हूं।

प्रश्न–ईश्वर साकार है वा निराकार? जो निराकार है, तो बिना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा, ओर जो साकार है तो कोई दाष नहीं आता।

उत्तर– ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है वह ईश्वर नहीं, क्ांकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश, काल, वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीडादि सहित होवे। उसमें जीवके बिनरा ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम ओर हम साकार अर्थात् शरीरधारी है, इससे त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते हैं। वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म जगत्

नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रिय–गोलक हस्त पादादि अवयवों से रहित है परन्तु उसकी अनन्त शक्ति, बल, पराक्रम हे, उससे सब काम करता है, जो जीव और प्रकृति से कभी नहीं हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उसमें व्यापक है, तभी उसको पकड़ कर जगदाकार कर देता है।

प्रश्न– जैसे मनुष्यादि के मां बाप साकार हैं, उनका संतान भी साकार हाात है। जो यह निराकार होते, तो इनके लड़के भी निराकार होते, वैसे परमेश्वर निराकार हो, तो उसका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये।

उत्तर–यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है। क्योंकि हम अभी कह चुके हैं, कि परमशेवर जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है। और जो स्थूल हाता है, वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य काग्र से सूक्ष्म आकार रखते है।''

–सत्यार्थ प्रकार समुल्लास 8

आगे री गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ लिखता हूं।

1. साचा रवि रहिया लिव लाई।

–राग मारू सोलहे महला 1 शब्द 14। 8

2. रूप न रोखिया मिति नहीं कीमत सबद भेद पतियाइंदा।

–राग मारु सोलहे म. 1 शब्द 14

3. वरना चिह्ना वाहरा लेखे वाझ अलख। क्यों कथिए क्यों आखीऐजापै सचो सच। –राग मलार वार महला 1 वार 24

4. तिस रूप न रेखिया वरन न कोई गुरमती आप बुझावणिया।

–राग माझ महला 3 अष्टपदियां अष्टपदी 19

5. तिस रूप न रेख्यिा घ घट देखिया गुरमुख अलख लखवणिया।

–राग माझ महला 4 अष्टपदियां अष्टपदि 34

6. आपे जल थल वरतदा मेरे गोविन्दा रवि रहिआ नहीं दूरी।

–राग गौड़ी महला 4 शब्द 68

7. वरना चिह्ना वाहरा कीमत कह न सकाउ।

–श्री राग महला 5 शब्द 77

8. ववा बैर न करिऐ काहूं। घट घट अन्तर ब्रह्म समाहूं।

—राग गौड़ी महला 5 वावन अखरी 46

9. जिस रूप न रेखिआ कुल नहीं जाति। पूरन पूर रहिआ दिन राती। —राग मारु महला 5 सोलहे शब्द 14

10. वरना चिह्ना वाहरा आह अगम अजिता।

—राग रामकली वार महला 5 वार 19

आगे दशम ग्रंथ जी के कुछ पाठ लिखता हूं।

11. अजात हरी, अपात हरी। अकाल उस्तुति छन्द 57

12. अभेद हरी, अछेद हरी। ,, ,,, ,, 59

13 अखण्ड हरी, अभण्ड हरी। ,, ,,, ,, 60

14. न रागं न रंगं न रूपं न रेखं। अकाल उस्तुति छन्द 91

15. अलेखं अभेखं अजोनि सरूपं। अकाल उस्तुति छन्द 92

16. न जातं न पातं न रूपं न रंगम्। अकाल उस्तुति छन्द 95

17. न जन्मं न मरनं न वरनं न वियाधे। अकाल उस्तुति छन्द 97

18. जिह शत्र मित्र नहीं जन्म जाति।
जिह पुत्र भ्रात नहीं मित्र तात। अकाल उस्तुति छन्द 123

19. जिह जात पात नहीं शत्र मित्र। अकाल उस्तुति छन्द 124

20. जिह रंग रूप नहीं राग रेख।
जिह जन्म जात नहीं भरम भेख। अकाल उस्तुति छन्द 124

21. न राग रंग रूप है न रोग राग रेख है।
अदोष अदाग अदग हे अभूत अभ्रम अभेख है। ,, ,, 163

22. जात पात न तात जाको ंत्र मात न मित्र।
सर्व ठौर विखे रमियो जिह चक्रच्निह नहीं चित्र।
आदि देव उदार मूर्ति अगाध नाथ अनन्त।
आदि अन्त न जानिऐ अविषद देव दुरन्त।

—अकाल उस्तुति छन्द 182

जिसकी अधिक जानने की अभिलाषा हो उसे सत्यार्थ प्रकाश पढ़ना चाहिये और सिख धर्म ग्रन्थ में जैसे यह शब्द है, वेसे ईश्वर अवतार कहने वाले भी हैं। उनको मैं यहां नहीं लिखता। साधारण रूप में अवतार विषय में वह शब्द लिखे है, वही देख लें। — + —

4.

ईश्वर निर्गुण—सगुण

निर्गुण शब्द के अर्थ गुण रहित और सगुण शब्द के अर्थ गुण सहित हैं अर्थात् जिसमे ंजो गुण नहीं है, उसकी दृष्टि से वह पदार्थ निर्गुण है और जो गुण उसमें है, उसकी दृष्टि से वह पदार्थ सगुण है। यह इन शब्दों का अर्थ जानना चाहिये।

ऋशि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाशमें ऐसा लिखा है।

प्रश्न— ईश्वर सगुण है वा निर्गुण?

उत्तर— दोनों प्रकार है।

प्रश्न— भला एक घर में दो तलवार कभी रह सकती हैं? एक पदार्थ में सगुणता ओर निर्गुणता कैसे रह सकती है?

उत्तर—जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गण जड़ में नहीं हैं। वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं है, इसलिये (यद्‌गुणैस्सह वर्तमानं तत्सगुणम्, गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्।) जो गुणों से सहित वह सगुण ओरजो गुणें से रहित वह निर्गुण कहाता हें अपने अपने स्वाभाविक गुणों से सहित ओर दूसरे विरोध ी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता वा केवल सगुणता हो, किन्त एक ही में सगुणता और निर्गणुता वा केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता होर निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से सगुण ओर रूपादि जड़ के तथा द्वेष आदि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

प्रश्न— संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं, अर्थात् जब पेरमेश्वर जन्म नहीं लेता, तब निर्गुण ओर जब अवतार लेता है तब सगुण कहाता है?

उत्तर—यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानों ी है जिसको

विद्या नही होती, वे पशु के समान यथा तथा बर्डाया करते है।, जैसे सन्निपात ज्वर–युक्त मनुष्य अण्ड बण्ड बकता है, वैसे ही अविद्वानो के कहे वा लेख को व्यर्थ समझना चाहिये।

–सत्यार्थ प्रकाा समुल्लास 7।

इस पाठ में महर्षि ने ईश्वर में जगत्–रचनादि गुणवान् होने से ईश्वर को सगुण ओर जड़ता, द्वेषादि न होने से निर्गुण माना है। यही सगुण और निर्गुण शब्द के अर्थ हैं।

पंडित तारासिंह जी ने गुरुगिरार्थ कोष में लिखा है :–

''निर्गुण। दे.। गुणहीन, मूर्ख, यथा ''मोह निर्गुण के दातारे''। एह अर्थ ईश्वर विच नहीं लगदा।,

दूर होगए है। मायक गुण जिसमें, वह परमात्मा यथा 'निर्गुण आप सरगुण भी ओही' जो माया क मेल से रहित शुद्ध दशा में सर्व गुणों से रहित है, वही माया के मल समय 'सरगुण' गुणों वाला होवे है अर्थात् जो शुद्ध दशा में सतो, रजो तमो रूप मायिक गुणों से, पुनः माया के सम्बन्ध से होने वाले दयालुता,सर्वज्ञतादि गुणों से रहित परमात्मा है, वही मूल दशा में, सतो रजो आदि पुनः तिस क मूल से होने वाले दयालुता, भगत वत्सलतादिक गुणों वाला है।

वैष्णव मत वाले तिनां गुणा दा नाम मायाा बोलते हैं, केवल सतोगुण दा नाम माया नही कहते यांते जो परमात्मा मायिक गुणें से रहित निर्गुण है, वही उसी समय अमाय रूप शुद्ध सतोगुण के प्रताप से सर्व गुणों वाला है। सर्वथा गुणों से हीन परमात्म कभी हनीं होता। जो सर्वथा गुणहीन कहते हैं, उनको शास्त्र के सद्धिान्त का पूरा ज्ञान नहीं है।''

इसमें पडित जी ने प्रथम वेदांत मतानुसार शुद्ध ब्रह्म को माया रहित और ईश्वर को माया सहित मान कर निर्गुण, सगुण की व्यवस्था की है। जो ठीक नहीं है और वेष्णव मत के नाम से लिख दिया है। परामात्मा सर्वथा निर्गुण कभी नहीं होता।

वेदान्त सिद्धांत है, ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है,ओर जगत कर्त्तव्य आदि गुण मायायुक्त ब्रह्म जिसे ईश्वर कहते है। उसमें हैं ब्रह्म में नहीं।

भाई कान्हसिंह जी ने इन शब्दों के अर्थ इस प्रकार लिखे हैं :–

सरगुण, सरगुन, सरगुनी। सं. सगुण। गुण सहित। माया दे तिन

गुण सत्, रज, तम सहित।

सरगुण, निरगुण थापे नाउ। –राग आसा महला 5
सरगुन निरगुन निरंकार। –राग गौड़ी सुखमनि महला 5
तू निरगुन तु सरगुनी। –राग गौड़ी महला 5

निरुण। सं. निर्गुण। माया दे सत्, रज, तम, गुणों ता रहित, शुद्ध ब्रह्म।

भाई जी ने भी वेदांत के ढंग पर ही अर्थ किये हैं। इसलिये गुरुग्रन्थ साहिब के प्रमाण भी लिखे हैं, वेसे ही कुछ मैं भी लिख देता हूं।

1. निर्गुण सरगुण आपे सोई।

–राग माझ अष्टपदियां महला 3। अष्ट 32।

2. निर्गुण सरगुण हरि हरि मेरा कोई है जीउ आन मिलावै जीउ।

–राग माझ महला 5 शब्द 12

3. तूं निरगुण सरगुण सुखदाता। –राग माझ महला 5 शब्द 28

गुरुधर में ईश्वर को निर्गुण तथा सगुण ताना है। इस विषय में अनेक शब्द मिलतेह॑।। वह सगुण को केवल गुणों वाला न मान कर माया सहित गुणें वाला ही मानते हैं, और निर्गुण को माया रहित शुद्ध नवीन वेदान्त के अनुसार मानते हैं। पंडित तारा सिंह जी, भाई कान्हसिंह जी इन शब्दों के अर्थ ऐसे ही करते हैं।

साधारण प्रजा में जिस समय ईश्वर शरीर धारण करता हे, जिसे वह अवतार कहते हैं, उस समय ईश्वर सगुण है, ओर जब शरीर धारण न किया हो, तब निगुण कहलाता है। इसलिए अवतारों के शरीर माया के माने जाते हैं, अस्मदादिवत् अविद्या के नहीं।

यह दोनों पक्ष युक्तियुक्त नहीं हैं। क्योंकि सगुण शब्द के अर्थ गुणसहित है।, इसलिये दयालुता, आदि गुणें वाला है और निर्गुण शब्द के अथ्र गुण रहित होने से अन्याय–कारिता आदि गुणों से रहित ही ठीक हे। इसीलिये महर्षि दयानन्द जी ने अपेन प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में निर्गुण सगुण शब्द के ठीक अर्थ किये हैं वही माननीय हैं।

– + –

5.

अवतार

अवतार शब्द का पारिभाषिक अर्थ है–ईश्वर का जीववत् शरीर धारण करना। जैसे राम, कृष्ण, नरसिंह, सूकर आदि अवतार माने जाते हैं। अवतार का प्रयोजन दुष्टों का नाश करना ओर श्रेष्ठों की रक्षा करना माना जाता है।

सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि दयानन्द जी ने इस विषय पर विचार किया है उनका पाठ निम्न प्रकार है।

प्रश्न– ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं?

उत्तर– नहीं, क्योंकि 'अज एकपात्' । यजुर्वेद अध्याय 34,–53। 'स पर्यगाच्छुक्रमकायम्' यजुर्वेद ध्याय 40। 8। इत्यादि वचनों से सिद्ध है, कि परमशेवर जन्म नहीं लेता।

प्रश्न– यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। गीता अध्याय 4 श्लोक 7।

श्री कृष्ण जी कहते हैं, कि जब जब धर्म का लोप होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूं।

उत्तर– यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं, और ऐसा हो सकता है, कि श्री कृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे, कि मैं युग–युग में जन्म ले के श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं, तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि परोपराराय सतां विभूतयः' परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन, होता है। तथापि इससे श्री कृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्न– जो ऐसा है, तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं?

उत्तर– वेदार्थ के न जानने, सम्यप्रदायी लोगों के बहकाने ओर अपने आप अविद्वान होने से भ्रम जाल में फंस के ऐसी ऐसी अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।

प्रश्न– जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस, रावण आदि दुष्टों का

नाश कैसे हो सके?

उत्तर– प्रथम तो जो जन्मा है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण यि बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ों के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस, रावणदि के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा हे, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव युक्त परमात्मा वो एक खुद्र जीव के मारने के लिए जन्म मरण युक्त कहने वाले को मूखपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है? ओर जो काई कहे, कि भक्तजनों के उद्धार रिने के लिए जन्म लेताह े, तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं,उनके उद्धार करने का सामर्थ्य ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के प्रृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनोन धारण ओर प्रलय करने रूप कर्मों से ंस, रावणदि का बध और गोवर्धन आदि पवतों का उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'न भूतो न भविष्यति' ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मुट्ठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नी ंहो सकता, क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना–जाना कभी सिद्ध नही हो सकता। जाना वा आना वहां ही हो सकता है जहां न हो। क्या परमशेवर गर्भ में व्यापक नहीं थ जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा? इसलिये परमेश्वर का जाना–आना, जन्म–मरणकभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये राग, द्वेषक्षुध, तृषा, भय, शोक, दुख–सुख, जन्म–मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य थे।

–सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 7

आगे श्री गुरुग्रन्थ साहिब के वह पाठ जो इसी भाव को प्रकट करते हैं लिख्ता हूं–

1. ना ति म तपिता सुत बंधप ना तिस काम न नारी।

—राग सोरठ महला 1 शब्द 6

2. ना ओह मरे न होवे सोगु। देंदा रहे न चूके भोग।
गुण एहो होर नाहीं कोइ। ना को होया ना को होइ।

3. अवर दूजा क्यों सेविए जो जम्मे ते मरजाइ। निः फल तिनकी जीविया जि खसम न जाणहि आपणा अवरी कउ चितलाई। नाक एवं न जापई करता केती दे जाइ।

—गुजरी की बार महला 3 वार 2

4. तूं पार ब्रह्म परमेश्वर जोनि न आवही।

—राग मारु वार महला 5 वार 3

5. सगल थीति पास डार राखी। अष्टमी थीति गोविन्द जन्मासी।1। भ्रम भूले नर करत कचरायण। जन्म मरण ते रहित नारायण। रहाउ। कर पंजीर खवाइयो चारे। ओह जनम न मरे रे साक्त ढोर। 2। सगल पराध देहि ले रोनी। सो मुख जलउ जितु कहे ठाकुर जोनि। 3। जन्म न मरे न आवे न जाइ। नानक का प्रीा रहिओ समाइ। —राग भेरउ महला 5 शब्द 1

6. नसंख न चक्रं न गदा न सियामं अश्चर्य रूपं रहत जनम। नेत नेत कथंति वेदा, ऊच मूच अपार गोविन्दः वसन्ति साधरिदयं अचुत। बुझन्त दनक वड भागीअः। —श्लोक सहस्कृति महला 5 श्लोक 57

7. लख चौरासीह जीअ जोति महि भ्रमत नन्द बहु थाको रे। भगति हेतु औतार लियो है भाग बड़े बपुरा को रे। तुम जु कहत हउ नन्द को नन्दन नन्द सुनन्दन काको रे। 1। धरनि अकाश दसो दिस नांही तब इह नन्द कहां थो रे। 1। रहाउ। संकट नहीं परे जोनि नहीं आवे नाम निरंजन जाको रे। कबीर को स्वामी एसो ठाकुर जाके माई न वापो रे।

—राग तिलंग कबीर शब्द 1

8. हक सच ख़ालिक खलक मियाने सियाम मूर्ति नाहि।

—राग तिलंग कबीर जी शब्द 1

आगे दशम ग्रन्थ जी का पाठ लिख जाता है।

9. नारायण कछ मछ हिंदुया कजित सभ कोल नाभ कोल जिह ताल में रहत है। गोपीनाथ गूजर गोपाल सभे धेनु चारी,ऋशिकेस नाम कह महंत लहीयत है। माधव भवर अर अटेरू को कन्हैया नाम कंस को वधैया जमदूत कहीयत है। मूढ रूढ पीटत न गूढ़ता को भेद पावे पूजत न ताहि

जाके राखे रहीयत है। —अकाल उस्तुति छन्द 74

10. विन करतान न किरतम मानो। आदि अजोनि अजै अविनासी तिह परमेसर जानो। 1। कहा भ्यो जो आन जगत में दसक असुर हरि घाए। अधिक प्रपंच दिखाई सभन को आपहि ब्रह्म कहाए। 1। भंजन गढ़न समरथ सदा प्री सो किम जात गिनायो। तांते सर्वकाल के आसि के घाइ बचाई न पायो। 2। कैसे तोहि तार है सुन जड़ जाप डुवियों भवागर। छूटहु काल फास ते तब ही गहो सरण जगतागर। 3।

—हजारे शब्द राग कल्याण पादशाही 10

11. केवल काल ई करतार। आदि अन्त अनन्त मूर्ति गड़न भंजन हार। निन्द उस्सतुति जौन को सम शत्रु मित्र न कोइ। कौन वाट परीति से पथ सारथी रथ होइ। —तिलंग काफी पादशही 10

12. जो कहो राम अजोनि अजै अति, कोहे कौ कौशल कुख जयोजू। काल हूं कान्ह कह जिहको, किह कारण काल ते दीन भयोजू। सनत सरूप विवैर कहाई सु क्यों पथ को रथ हांक धयोजू। ताही को मान प्रभू करके जिह को कोऊ भेद न लेन लयोजू।

13. क्यों कहु कृष्ण कृपानिधि है किह काज ते वधक वाण लगायो। और कुलीन उधारत जो किह ते अपने कुल नास करायो। आदि अजोनि कहाइ कहो किम देवकि के जठरागन आयो। तात न मात कहे जिह को तिह क्यों वसुदेवहि बाप कहायो। 14।

14. काहे को ईस महेस हि भाखत, काहे द्विजेशको ईस बखानियो। है न रघेश यदेश रमापति तै जिनको विश्वनाथ पछानियो। एक को छाड़ अनेक भजे सुकदेव परासर व्यास झुठानियें। फोकट धर्म सजे सभ ही हम एक ही को विधनेक प्रमानियों। 15।

15. जाल बधे सब ही मृत के कोऊ राम रसूल न वाचन पाए। दानव देव फनिन्द धराधर भूत भविष्य उपाइ मिटाए। अन्त मरे पछताइ पृक्षी पर जे जग में अवतार कहाए। रे मन लैलई कैल ही काल के लागत काह न पाइन धाए। —23 सवैये।

16. जाको नाम है अजोनि, कैसे कै जन्म लेत, कहां जान जन्म व्रत ष्टमी को कीनों है। जाको जगजीवन अकाल अविनासी नाम, कैसे के वध ाक मारयो अपयश लीनो है। निरमल निरदोष मखपद जाके नाम होत,

गोपीनाथ कैसे ह्वे विरह दुःख दीन है। —भाई गुरुदास सवैये 485

यह शब्द सब ईश्वर के अवतार का निषध करते हैं। किन्तु ऐसे शब्द भी न्यून नहीं हैं, जो अवतार मानते हैं। इसलिये अवतार के पोषक शब्द लिखता हूं।

1. तन मन सौपउ कृष्ण प्रीत।

—राग आसा अष्टपदिया महला 1 अष्टपदि 4 पद 5

2. चेतहु वासु देव वनवाली। राम रिदे जप माली।

—राग गुजरी, अष्ट. महला 1 अष्टपदि 1 पद 1

3. हुकम उपाए दस औतार।

—राग मारु सोहले महला 1 शब्द 16

4. दस अवतारी राम राजा आइआ। दैता तारे धाइ हुकम सवाइआ।

—राग मलार महला 1 वार 3

5. एक कृष्णंत सर्वदेवा देव देवात आत्मः। आतमं स्त्री वासुदेवस जे कोई जानसि भेव। नानक ताका दास है सोई निरंजन देव।

—श्लोक सहस्कृति महला 1

6. सतजुग तैं माणियो छलियो बलि बावन भाइयो। त्रैते तै माणियो राम रघुवंस कहाइयो। द्वापर कृष्ण मुरारि कंस कृतार्थ कियो। उप्रसैन को राज अभय भगतन जन दियो। —सवैये महला 1 सवैया 7

7. मति मलीन प्रगट भई जप नाम मुरारा।

—राग गौड़ी महला 3 शब्द 38

8. कवलनैन मधुर वैन कोटि सेन संग सोभ कहत मां जसोध जिसकह दही भातु खहि जीउ। —सवैये महला 4।। 1 । 6

9. सुधर चित भगत हित भेख धरियो हरणखसु हरियो नख विदारि जीउ। 2। 7

10. पीत वसन कुन्द दसन प्रिय सहित कण्ठ माल मुकुट सीस मोर पंख चाहि जीउ। 3। 8

11. बलिह छलन सवल मलन भगत फलन कान कुअर निःकलंक वजी डंक चड़ दल रविन्द जीउ। राम रवण दुरत दवण सकल भवण कुशल करण सर्वभूत ाप ही देवाधिदेव सहस मुख फनिन्द जीउ। जरम करम मछ कच्छहु अवराह जमुना कै कूल खेल खेलियो जिन गिन्द जीउ। 4। 9।

—सवैये महला 4

12. हरि जुग जुग भगत उफइआ पैज रखदा आइआ राम राजे। हरणास्वस दुष्ट रहि मारिया प्रल्हाद तराइया। अहंकारियां निन्दकां पीठ दे नामदेउ मुख लाइआ। —राग आसा महला 4 छन्द 20

13. उबरत राजाराम की सरणी।

—राग गौड़ी माला महला 5 शब्द 162

14. जप मनातूं राम नारायण गोविन्दा हरिमाधो। ध्याय मना मुरारि मुकन्दे कटिए काता दुःख फाधो। दुःख हरण दीन शरण श्रीधर चरण कमल आराधिए। जम पंथ विखड़ा अग्नि सागर निमख स्मृत साधिए। कलि महहि दहता शुद्ध करता दिनसुरैण आराधो। विनवन्त नानक करहु कृपा गोविन्द गोपालमाधो। —राग गौड़ी छन्त महला 5 शब्द 10

15. होए राजे राम की रखवाली। सूख सहज आनन्द गुण गसवहु मन तन देह सुखाली। —राग सोरठ महला 5 शब्द 45

17. सुण साखी मन जप पिआर। अजामल उधरिआ कहि एकवार। वालमीकै होया साध संग। ध्रू को मिलियो हरि निसंग। 1। गनिका उधरी हरि कहि तोत। गजइन्द्र ध्याइयो हरि कियो मोख। विप्र सुदामें दालद भज। रे मन तू भी भज गोविन्द। 2। वधिक उधरियओ खमि प्रहार। कुविजा उधरि अंगुष्ठ धार। बिदुर उधारि यो दासित भाइ। रे मन तूं भी हरि ध्याइ। 3। प्रल्हाद रखि हरि पैज आप। वस्त्र छीनत द्रोपदि रखी लाज। 4। धन्ने सेविआ बालबद्धि। त्रिलोचन गर मिल भई सिद्धि। वेगी कउ गुर कियो प्रगास। रे मन तूं भी होहि दास। 5। जैदेव त्यागिओ अहमेव। नाई उधरियो सेणसेव। 6। कबीर ध्याइयो एक रंग। नामदेव हरिजीउ वसहि संग। रविदास ध्याए प्रभु अनूपं गुरु नानकदेव आनन्द रूप।

—राग वसन्त महला 5 अष्टपदियां अष्टपदि 1

18. मनरे प्रभु की रसन विचारो। जिहि स्मृत गनकासी उधरी ताको जस उरधारो। अटल भयो ध्रू जाके सिमरन घर निरभय पद पाइआ। दुःख हरता इह विधि को स्वामी तैं काहे विसराइआ। 1 जब ही सरन गही कृपानिधि गज गराह ते छूटा। महिमा नाम कहा लउ वरनउ राम कहत बंधन तिह तूटा। 2। अजामल पापी जग जोन निमख माही निस्तारा। नानक कहत चेत चिंतामणि है भी उतरहि पारा। 3।

—राग सोरठ महला 9 शब्द 4

19. मन रे सरियो न एकै काजा। भजियो न रघुपति राजा।

—राग सोरठ कबीर जी शब्द 3

संख्या 17 में जो भगतों के अनेक नाम आये हें, उनमें अनेकां का भगत माल में वर्णन है और भाई गुरदास जी ने दसवी बार में इनका वर्णन यिका हे। इन सबको ईश्वर का साक्षात्कार मनुष्य साक्षात्कार के समान ही लिखा है। इस कारण ही मैंने इन शब्दों को यहां लिख दिया है।

— + —

6.

मूर्त्ति पूजा

मूर्ति पूजा शब्द का भाव है परमेश्वर वा किसी अवतार तथा किसी आचाग्र की मूर्ति लकड़, पत्थर, भृत्तिका, सोने, चांदी, लोहे, पीतल, तांबे अथवा अन्य किसी धातु की बनाकर, उसकी पूजा अर्थात् उसे भोग लगाना, नैवेद्य अर्पण करना। भाव यह किसी अचेतन वस्तु में चेतनवत् व्यवहार करना मूर्ति पूजा है।

कई मूत्तियों के लिये सुलाना, उठाना, स्नान करवाना आदि भी किया जाता है।

भारत में प्रायः शिव और विष्णु की मूत्तियां अधिक हैं शिव की मूर्ति का स्नान, भोगादि तो होते हैं, अन्य बातें अधिक नहीं हैं। विष्णु की मूर्ति के लिये बंधन अधिक है। शिव का नैवेद्य भी सामान्य है। विष्णु की मूर्ति को भोग्य पदार्थ विशेष रूप से दिये जाते हैं। अवतारो में राम, जिसकी मूर्ति सीता सहित होती हे, कृष्ण जिसकी मूर्ति राधा सहित है, लक्ष्मी नारायण, नरसिंहादि की मूर्तियां हैं। शिव की मूर्ति शिवलिंग के नाम से प्रसिद्ध है और विष्णु की मूर्ति आकार से भिन्न शालिग्राम आदि भी हैं। शक्ति की मूर्तियां भिन्न देवी के ना से बनाई जाती हैं। इसी प्रकार हनुमान जी की मूर्तियां होती हैं। इसी प्रकार नाना प्रकार से नाना प्रकार की आकृतियों द्वारा नाना देवी देवताओं की मूर्तियां हैं।

मूर्ति में जब तक देवता का आवाहन न किया जाय, उस समय तक वह पूजा योग्य नही होती हे। उस समय तक वह देवता नहीं धातु, काष्ठ वा पत्थर की मूर्ति ही हे। जब उसमें देवता का आवाह्न किया जाय तब वह पूजा योग्य हो जाती है। उसी समय वह देवता रूप से पूजी जाती है।

जिस भांति देवता का आवाह्न होता है, उसी प्रकार उसका विर्जन भी होता है। जिस समय विसर्जन किया जाय, उसके पश्चात् वह मूर्ति पूजा योग्य नहीं रहती है।

इस बात को यदि कोई साक्षात् देखना चाहे, तो कलकत्ता में दुर्गा

पूजा ओरबम्बई में गणेश उत्सव देख सकता है। वहां हजारों मूर्तियां बनाई जाती हैं और श्रद्धालु भगत उसे क्रय कर ले जाते हैं। उसके पश्चात् उसी पूजा आरम्भ होती है, नियत समय के पश्चात् देवता का विसर्जन किया जाता है। फिर उसी मूर्ति को उठाकर गाजे–बाजे के साथ कलकत्ता में गंगा मे बहा देते हैं और बम्बई में समुद्र–प्रवाह किया जाता है।

यह सब मूर्तियां मिट्टी की होती हैं। मूर्ति बनने स पूर्व साधारण मिट्टी थी, मूर्ति बने पर उसकी आकृति के अनुसार देवी वा गणेश नाम हो गया, क्रय करने के पश्चात् आवाहन हो जाने पर वह देवता बन गई। पूजा के पश्चात् विसर्जन होने पर वह मिट्टी की आकृति मात्र रह गई और गंगा या समुद्र में डाल देने से पुनः मिट्टी हो गई।

मूर्ति को जो पदार्थ भोग रूप में दिया जाता है उसे पीछे पुजारी खाता है अथवा भक्तों में बांटा जाता है। उसे देवता का सीत प्रसाद कहते है।। भक्त श्रद्धा से लेते हैं।

ऋशि दयानन्द जी ने मूर्तिपूजा विषयक अपने विचार सत्यार्थ प्रकाश के 11वें समुल्लास में प्रगट किये हैं। इसलिये उनका लिखा पाठ यहां लिखना उचित समझ के लिखता हूं।

प्रश्न– परमेश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आ सकता, इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे, तो मूर्ति के सम्मुख आ, हाथ जोड़, परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं। इसमें क्या हानि है?

उत्तर– जब परमेश्वर निराकार, सव्रव्यापक है, तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती ओर जो मूर्ति के दश्नन मात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे, तो परमेश्वर के बनाए पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमं ईश्वर ने अद्भुत रचना की है, क्या ऐसे रचना युक्त पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ओर वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचन की है, क्या ऐसे रचना युक्त पृथिवी, पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियां बनती ह।, क्या उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता? जो तुम कहते हो, कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है, यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है और जब हय मूर्ति सामने न हाती, तो परमेश्वर के स्मरण न होन

से मनुष्य एकांत पाकर चोरी, जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्यांकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नही देखता इसलिये वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पापाणादि मूर्ति पूजा करने से सिद्ध होते हैं। अब देखिये, जो पाषाणादि मूर्तियों को न मान कर सव्रदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता ओर मानता है, वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सबके बुरे–भले कमों का द्रष्टा जान कर एक क्षण मात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक न जानके, कुकर्म करना तो कहां रहा, किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता, क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, चन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा, तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाए कदापि न बचूंगा। और नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता, जैसा कि मिश्री मिश्री कहने से मुंह मीठा और पीम नीम कहने से कड़वा नहीं होता, किन्तु जीभ से चाखने ही से मीठा व कड़वापन जाना जाता है।

प्रश्न–हम भी मानते हैं, कि परमेश्वर निराकार है, परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार लिये। इससे उसकी मूर्ति बनती है। क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर– हां हां झूठी। क्योंकि ''अज एकपात्'' ''अकायम्'' इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म, मरण और शरी–धारण रहित वेदों मं कहा हैं तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभीनही हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्व–व्यापक, अनन्त और सुख–दुःख दृश्यादि गुण रहित हे चह एक छोटे से वीर्य गर्भाशय और शरीर में क्यों कर आ सकता है? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो। जो अचल अदृश्य जिसके बिना एक परमाणु भी खाली नही है उसका अवतार कहना, मानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पोत्र के दर्शन करने की बात कहना है।

प्रश्न–जब परमेश्वर व्यापक है, तो मूर्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यो नहीं? देखो :–

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्।

परमेश्वरदेव न काष्ठ, न पापाण, न मृत्तिका से बनाए पदार्थों में है किन्तु परमेश्र तो भाव में विद्यमान है। जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध

होता है।

उत्तर– जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है, तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावनां कर अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है, कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो यह कितना बड़ा अपमान है।वेसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। ज व्यपक मानते हो वाटिका में से पुष्प, पत्र तोड़के वें चढ़ाते? चन्दन घिसके क्यो लगाते? धूप कोजलाके क्यों देते? घण्टा, घड़ियाल, झांज पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते? शिर में है, क्यों शिर नमाते? अन्न, जल आदि में है, क्यों नैवेद्य धरते हो? जल में है, स्नान क्यों कराते? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो, तो पाषाण, लकड़ी आदि पर चन्दन, पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो? ओरजो व्याप्य की करत हो, तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यें बोलते हो, तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो? हम पापाणादि के पुजारी हैं ऐ सत्य क्यों नहीं बोलते।

अब कहिये कि भाव सच्चा है या झूठा? जो कहो सच्चा है, तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायेगा, और तुम मृत्तिका में सुवर्ण, रजतादि, पाषाण में हीरा पन्नादि, मसुद्रफेन में मोती, जल में घृत, दुग्ध, दधि आदि ओर धूलि में मैदा, शक्कर आदि की भावना करे उनको वेसे क्यों नहीं बनाते हो? तुम लोग दुिःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता? और सुख की भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नही देखता? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो? इसलिए तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्यांकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना है। जैसे अग्नि, जल में जल जानना ओर जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैवसा जानना ज्ञान, और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।

प्रश्न– अजी जब तक वेदमन्त्रों से आवाहन नही करते, तब तक देवता नहीं आता ओर आवाहन करने से झट आता है और विसर्जन करने से चला जाता है।

उत्तर–जो मन्त्र को पढ़ कर आवाहन करने से देवता आ जाता है, तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती और विसर्जन करने से चला जाता है इसका भी क्या सबूत? ओर वह कहां से आता और कहां को जाता है? सुनो अन्धें! पूर्ण परमात्मा को बुला लेते हो, तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते? और शत्रु के शरी में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते? सुनो भाई भोले भाले लोगों! यह पोप जी तुम को ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पापाणदि मूर्तिपूजा ओर परमेश्वर के आवाहन–विसर्जन करने का एक अक्षर भी नही है।

प्रश्न– मूर्तिपूजा में पुण्य नही तो पाप तो नहीं है।

उत्तर–कर्म दो ही प्रकार के होते हैं, विहित, जो कर्तव्यता से वेद में सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध–जो अकर्तवयता से मिथ्याभाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना हव धर्म उसका न करना अधर्म है, वे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म ओर न करना धर्म है। जब वेदों से निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो, तो पापी क्यों नहीं?

प्रश्न– देखो वेद अनादि हैं। उस समय मूर्ति का क्या काम था? क्योंकि पहले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्त्र ओर पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान ओर सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान से नहीं ला सकते और मूर्ति का ध्यान तो कर सकते हैं। इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी सीढ़ी से चढ़े तो भ्वन पर पहुंच जाय। पहली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे, तो नहीं जा सकता, इसलए मूर्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते–पूजते जब ज्ञान होगा ओर अन्तःकरण पवित्र होगा, तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य का मारने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता–मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है, वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता करता पुनः सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैस लड़कियां गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं, जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं, इत्यादि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्टकाम नहीं।

उत्तर–जब वे विहित धर्म और वेद विरुद्धाचरण में अधर्म है, तो पुनः

तुम्हारे कहने से भी मूर्ति पूजा करना अधर्म ठहरा। जो–जो ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं, उन–उन का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो :–

नास्तिको को वेदनिन्दकः। मनु. अध्याय 2 श्लोक 1।

मनु जी कहते हैं, जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता हे वह नास्तिक कहाता है.......

मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता, किन्तु जो कुछ ज्ञान है, वह भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा संग से ज्ञान बढ़ता है, पापाणादि से नहीं। क्या पापाणदि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को धन में कभी ला सकता है? नहीं–नहीं मूर्ति–पूजा सीढ़ी नही किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है। फिर उस खाई से नहीं निकल सकता, किन्तु उसी में मर जाता है। हां छोटे–छोटे धर्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या ओर सत्य–भाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियां हैं। जैसे ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है। किन्तु मूर्तिपूजा करते–करते ज्ञानी तो कोई कन हुआ, प्रत्युत सब मूर्तिपूजक अज्ञानी रह कर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके बहुत से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्य जन्म के धर्म, अर्िं, काम ओरमोक्ष की प्राप्ति रूप फलों से विमुख होर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्ययत् नहीं, किन्तु धार्मिक, विद्वान् और सृष्टि विद्या है। इसको बढ़ाता–बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है और मूर्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं, किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा, तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।

प्रश्न–साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्ति पूजा रहनी चाहिये?

उत्तर– साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्समर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता, किन्तु उीसके गुण कर्म स्वभाव का विचार करता करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है और जो साकार में स्थिर होता, तो सब जगत का

मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता, जब तक निराकार में न लगावें। क्योंकि निरवयव होने से असमें मन स्थिर हो जाता है इसलिये मूर्ति पूजन करना अधर्म है।

दूसरा– उसमें करोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा–स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

चौथा–उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मान के पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है।

पांचवां–नाना प्रकार की विरुद्ध सवरूप नाम चरित्र युक्त मुर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चलकर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं।

छठा–उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय ओर अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय राज्य स्वातन्त्र्य ओर धन का सुख उनके शत्रुओ के स्वाधीन होात है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं।

सातवां– जब कोई किसी को कहे, कि हम तेरे बैठने के आसन या नाम पर पत्थर धरें, तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान करता हे, वेस ही जो परमेश्वर की उपासना के स्थान हृदय ओर नाम पर पाषाणदि मूर्तियां धरते हैं, उन दुष्ट बुद्धि वालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करें?

आठवां– भ्रांत होकर मन्दिर मन्दिर देश देशान्तर मे घूमते घूमते दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करे, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नवमां–दुष्ट पुजारियों को धन देते है, वे उस धन को वेश्या परस्त्री गमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दसवां– माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि

मूर्तियों का मान करके कृतध्न हो जाते हैं।

ग्यारहवां–उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा हा करके रोते रहते हैं।

बारहवां–पुजारी परस्त्री के संग और पुजारिन परपुरुषें के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

तेरहवां– स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्ध भाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

चौदहवां–जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़ बुद्धिहो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

पन्द्रहवां– परमेश्वर ने सुगंधि युक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण ओर आरोग्यता के लिए बनाये हैं, उनको पुजारी जी तोड़ ताडकर, न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धित आकाश में चढ़ कर वायु जल की शुद्धि करता और पूण्र सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होात, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्ध युक्त पदार्थ रचे हैं?

सोलहवां–पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प, चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिक के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है, कि जितना मनुष्य के मल का, ओर सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं, ऐसे ऐसे अनेकों मूर्तिपूजा की पूजा सज्जन लोगों को त्यक्तवय है और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे न बचते हैं और न बचेंगे।

प्रश्न–किसी प्रकार की मूर्ति पूजा करनी करानी नही और जो अपने आर्यावर्त मे ंपंचदेव पूजा शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है, उसका अभिप्राय यही पंचायतन पूजा, जो कि शिव, विष्णु अम्बिका, गणेश ओर सूय्र की मूर्ति बनाकर पूजते हैं वह पंचायतन पूजा है वा नहीं।

उत्तर–किसी प्रकार की मूर्ति पूजा न करना, किन्तु मूतिमान् जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। यह पंचदेव पूजा

पंचायतन पूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थ वाला है, परन्तु विद्याहीन मूो ंने उसके उत्तम अर्थ को छोड़ कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया, जो आजकल शिवादि पांचों की मूर्तियां बनाकर पूजते हैं। उनका खंडन तो अभ कर चुके हैं। यह तो सच्ची पंचायतन वेदोक्त ओर वेदानुकूलोक्त देव पूजा और मूर्ति पूजा है सुनो :–

मानो वधीः पितरं मोत मातरम्।1। यजुः अध्याय 16, मंत्र 15

आचायों ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते। 2।

–अथर्व कांड 12, व. 5 मंत्र 17

तथिर्गृहानागच्छेत्। 3। –अथर्व कांड 15 व. 13 मंत्र 6

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासे अर्चत। –ऋग्वेद मंडल 8। 69। 8

मातृदेवो भव पितृ देवो भव आचार्य देवो भय अतिथिदेवों भव।

–तैत्तिरीयोप. बल्ली 1 अनु. 11

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।

पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः। –मनु. अ. 3। 555

पूज्यो देववत्पतिः। –मनुस्मृति अध्याय 5। 156

प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानो को तन, मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना।

दूसरा पिता सत्कर्तत्य देव उसकी भी माता के समान सेवा करनी, तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है, उसकी तन, मन, धन से सेवा करनी, चौथा अतिथि जो विद्वानृ, धार्मिक, निष्कपटी सबकी उन्नति चाहने वाला जगत में भ्रमण करता हुआ सत्य उपदेश से सबकोसुखी करता हे, उसकी सेवा करें।

पांवचां–स़्री के लिये पति और पुरुष के लिए स्त्री पूजनीय है। ये पांच मूर्तिमान देव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या ेार सत्य उपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढियां हैं। इनकी सेवा न करे जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव पामर नरकगामी हैं।

प्रश्न–माता पिता आदि की सेवा करें, और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं?

उत्तर–पाषाणदि मूर्ति पूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानो की सेवा करेन मे ही कल्याण हैं बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढ़ों ने इसलिए स्वीकार किया है, कि जो माता पिता आदि के सामने नैवेद्य वा भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा लेंगे, तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। ससे पाषाणादि की मूर्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घण्टा नाद टं टं पूं कर शंख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात् 'त्वमंगुष्ठ गृहाण भोजनं पदार्थ वाऽहं ग्रहीष्यामि' जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे, कि तू घण्टा ले और अंगूठा दिखलावे, उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वेस ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। मूढों को चटक–मटक, चलक–झलक मूर्तियों को बना–ठना आप वेश्या वा भड़वा के तुल्य बन–ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मार के मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता, तो इन पाषाण प्रियों को पत्थर तोड़ने बनाने और घर रचने आदि कामों मे लगाके खाने पीने को देता, निर्वाह कराता। –सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास

थोड़े शब्दों में ऋषि का भाव लिखता हूं। जो इस प्रकार है :–

परमेश्वर की कोई मूर्ति नही बन सकती, और पाषाण, काष्ठ, धातु आदि की मूर्तियो की पूजा वेदविरुद्ध है, त्याज्य है। चालाक मनुष्य मूर्तियां बना कर भोले–भाले मनुष्यों को ठगते हैं। मूर्तियों के नाम पर माल पदार्थ लेकर स्वयं भोगते हैं। मूर्तिपूजा में कोई लाभ नहीं है और हानियां अनेक हैं। इसलिये मूर्तिपूजा सर्वथा त्याज्य है।

आगे मैं वह शब्द लिखूंगा, जिनमे इस विषय का उल्लेख है :–

श्री गुरुग्रंथ साहिब जी ओर दसम ग्रन्थ जी के शब्द लिखकर पुनः सिखों के प्रतिष्ठित सिख लेखकों का मत भी संक्षेप से लिखूंगा। श्री गुरुग्रंथ साहिब में गुरुओं और भगतों के शब्द सम्मिलित हैं। इसलिए उन शब्दों में जहां गुरुओं के शब्द होंगे वहां भगतों के भी होंगे। जिससे पाठक उनके भाव को ठीक–ठीक समझ सकें।

1. घर नाराइण सभा नाल। पूज करे रखे नावाल। कुंगू चंनण फूल चढ़ाएं पेरी पै पै बहुत मनाए। माणूया मंग मंग पहने खाइ। अन्धी कंमी अन्ध सजाइ। भुखियां देनप मरदियां रखे। अन्धा झगड़ा अन्धी सथे।

–राग सारंग वार, म. 1 श. 9

2. दुविधा न पड़उ हर बिन होर न पूजउ मड़े मसाणि न जाई। त्रिपण राच न पर घर जावा त्रिषणा नाम बुझाई। घर भीतर घर गुरु दिखाइया सहज रते मन भाई।

–राग सोरठ अष्टपदिया म.1 श. 1, 1

3. पूजा सिला तीरथ बनवासा। भ्रमत डोलत भए उदासा। मन मैले सूचा क्यों होइ। साच मिले पावेपति सोइ।

–राग धनासरी अष्टपदिया म.1 शब्द 2, 5

4. नावहि धोवहि पूजहि सैला। बिन हर राते मैलो मैला।

–रामकली अष्टपदिया म. 2 श. 4, 3

5. देवी देवा पूजिएभाई क्या मांगउ क्या देह।
पाहण नीर पखालिऐ भाइ जल महि डूब तेह।

–राग सोरठ अष्टपदिया मं. 1 श. 4, 6

6. हिन्दू मूले भुले अखुटी जांहीं। नारद कहिआ सि पूज कराहीं।
अंधे गूंगे अन्ध अन्धार। पाथर जे पूजहि मुग्ध गवार।

–बहागडा वार मं. 1 श. 20

7. भ्रम भूले अज्ञानी अन्धुले भ्रम भ्रम फूल तोरावै।
निरजीउ पूजहि मडा सरेवहि सब विरथी घाल गवावै।

–राग मलार म. 4 श. 4, 3

8. घर महि ठाकुर मदर न आवै। गली महि पाहन लै लटकावै। भ्रमे भूला साकत फिरता। नीर विरोले रूवप खप भरता। 1। रहाऊ जिस पाहण कउ ठाकुर कहता। ओह पाहण लै उसको डुबता। 2। गुनहगार लूण हरामी। पाहण नाव न पार गिरामी। 3।

गुरु मिल ननक ठाकुर जाता। जल थल महिअल परण विधाता। 4। –राग सूही महला 5 शब्द 9

9. जो पाथर कउ कहते देव। ताकि विरथा होवे सेव। जो पाथ्रकी पाई पाइ। ताकी घाल अजाई जाइ। 1। ठाकुर हमरा सद बोलन्ता। सरव जीआ कउ प्रभु दान देता। 1। रहाउ। अन्तर देउ न जाने अन्धु। भ्रम का मोहिया पावै फंधु। न पाथर बोले न किछ देउ। फोकट करम निःफल है सेव। 2। जे मृतक कउ चन्दन चढ़ावै। उससे कहहु कवन फल पावै। जै

मृतक कउ विष्ठा माहिं रुलाई। तां–मृतक का क्याघट जाई। 3। कहत कबीर हउ कहउ पुकार। समझ देख साकत गवार। दूजै भाइ बहुत घर गालै। राम भगत है सदा सुखाले।। –राग भेरौ कबीर जी शब्द 12

10. कबहीर ठाकुर पूज हि मोल लै मन हठ तीर्थ जाहि। देख देखी खांग धर भूले भटका खाहि। 135। –श्लोक कबीर जी

11. कबीर पाहन परमेश्वर किया पूजै सब संसार। इस भरवासे जो रहे बूड़े काली धार। 136। –श्लोक कबीत जी

12. देवी देवा पूजहि डोलहि पार ब्रह्म नहीं जाना। कहत कबीर अकुल नहीं चेतिया विखिया सिउ लिपटाना।

–राग गौड़ी कबहीर जी शब्द 45

13. पाती तोरे मालिनी पाती पाती जीउ। जिस पाहन कउ पाती तोरे सो पाहन निरजीउ। 1। भूली मालिनी है देउ। सतगुर जागता है देउ। 1। रहाउ। ब्रह्म पाती दिसन डाली फूल संकर देउ। तीन देव प्रतख तोरहहि करहि किस की सेउ। 2। पाषाण गढ़कै मूर्ति कीनी देके छती पाउ। जे एक मूर्ति साची है तउ गड़नहारे खाउ। 3। भात पहित अर लापसी करकरा कासार। भोगन होर भोगिया इस मूर्ति के मुख छार। 4। मालिनी भूली जगु भुलाना हम भुलाने नाहि। कह कबीर हम राम राखे कृपा कर हर राय। 5।

–राग आसा कबीर जी शब्द 14

14. बत पूज पूज हिन्दू मूए तुरक मूए सिर नाई। ओह ले जारे ओह ले गाडे तेरी गति दुहुं न पाई। 1। मनरे संसार अन्ध गहेरा। चहुं दिस पसरियों है जम जेवरा। –सोरठ कबीर जी?

15. जहि जाइऐ तहि जल पाषाण। तू पूर रहियो सम समान।

–राग बसन्त रामानन्द

आगे दसम ग्रन्थ जी से कुछ छन्द लिखता हूंः–

1. काहूं लै पाहन पूज धरियों सिर, काहूं ले लिंग गरे लटकायें काहू लखियों हरि अवाचि दिसा महि, काहूं पछा हि को सीस नवायो। कोऊ बुतान को पूजत है पसु, कोऊ मिरतान को पूजन धायो। कूरक्रिया उरझियों सब ही जग, श्री भगवान का भेद न पायो।

–अकाल उस्तुति छन्द 30

2. पाषाण पूज हों नहीं। न भेख भीज हों कहीं। अनन्त नाम गाइ हों। परम पुरुष पाइ हों। –विचित्र नाटक अ. 6। 35

3. पाषाण पूज हों नहीं। न भेख भीज हो कहीं। अनन्त नाम गाइ हों। परम पुरुष पाइ हों। –विचित्र नाटक अ. 6। 35

4. इक विन दूसर कियो न चनार। भंजन गड़न सप्तरथ सदा प्रभु जानत है करतार।1। रहाउ। कहा भयो जो अतिहित चितकर बहुविघ सिला पुजाई। मान थके पाहन कर परसत कछु कर सिद्धि न आई। अछत धूप दीप अरपत है, पाहन कछु न खे है। ता में कहां सिध हे रे जड़ तोहि कहां बहु दै है। जो तीअ होत देत कछु तुहि कर मन वच करम विचार। केवल एक सरण स्वामी बिन यों नहीं करत उधार।

–देव गंधारी पाद 10 श. 1

5. काहूं लै ठोक बधे उर ठाकुर काहूं महेस को ईश बखानियो। काहूं कहियो हरि, काहूं मसीत के बीच प्रमानियों। काहूं ने राम कहियो कृष्ण कहूं काहूं मने अवतारन मानियो। फोकट धर्म विसार सभे करतार ही कउ करता जीउ जानियो। –सवैये पात. 10। 12

6. काहे कउ पूजत पाहन कउ कछु पाहन में परमेसर नाही। ताहीं को पूज प्रभु करके जिहिं पूजत ही अब ओध मिटाही आधि विआधि के बन्धन जे तक नाम के लेत सभे छूट जाहीं। तांही को ध्यान सदा यह फोकट धरम करे फल नाहीं। –सवैये 20

7. फोकट धर्म भयो फल हीन जु पूज सिला जुग कोटि गवाई। सिद्ध कहां सिल के पर से बल बुद्धि घटी नव निधिन पाई। आज ही आज समय जु वितियो नहि काज सरयो कछ लाज न आई। श्री भगवन्त भजयो न अरे जड़ ऐस ही ऐसु सुवैस बिताई। –सवैये 21

8. जो जुग ते कर हैं तपसा कछु तोहि प्रसन्न न पाहनै है। हाथ उठाइ भली विधि सों जड़ तोहि कछु वर दान न दैं है। कौन भरोस भयो इह को कहु भीर परी नहीं आज बचै है। जान रे जान जान हठी इस फोकट धरम सु भ्रम गवै है। –सवैये 22

9. वेद कतेव पढ़े बहुते दिन भेद कछ तिनको नहीं पाइयो पूजत ठौर अनेक फिरियो पर एक कवे हिय मैं न बसाइयो। पाहन को अस्थालय को सिर नियाय फिरियो कछु हाथ न आइयो। र मन मूढ अगृढ़ प्रभु तज आपन रूढ़ कहां उरझाइयो। –सवैये 26

10. ताको कर पाहन अनुमानत। महा मढ़ कछु भेद न जानत महादेव को कहत सदा शिवं निरंकार का जीनत नहि भिव। –बेनती चौ.392

11. मनम कुशतनम कोहियां बुत प्रस्त। कि ओ बुत प्रस्तन्द मन बुत शिकस्त। –जफरनामा पातशाही 10 छन्द 95

अर्थ–मं पहाड़ी मूर्ति पूजकों को मारता हूं। क्योंकि वह मूर्ति पूजक ओर मैं मूर्ति भंजक हां।

टिप्पणी– भाइ्र कन्कहसिंह जी नाभा निवासी ने गुरुमत सुधाकर नाम के पुस्तक में लिखा है। यह पुस्तक दूसरी आवृत्ति सन 1911 ई. में मुफीद आम प्रेम लाहौर में छपा था। भाई अर्जुन सिंह जी बागडियां वाले की सहायता से छापा गया था। उसके पृष्ठ 84 पर इस पाठ को निम्न प्रकार छापा है।

'मनम कुश्तने कोहियां पुर फितन। कि आं बुतप्रस्तन्द मन बुत शिकन।' अर्थात् मैं उपद्रवी पहाड़िऋयों को मारता हूं क्योंकि वह मूर्ति पूजक हैं और मै। मूर्ति खंडक हां।

इस पाठ में भाई जी ने पूर्वार्ध में 'बुतप्रस्त' शब्द को पुर फितन से बदला है और अर्थ उपद्रवी किया है। पुरफितन के अर्थ उपद्रवी ही हैं। किन्तु पाठ बदलने में कोई हेतु नहीं बताया है और मेरे पास जो दसम ग्रंथ जी की प्रति है, उसमें बुतप्रस्त ही पाठ है। ओर यही ठीक प्रतीत होता है। क्योंकि उत्तरार्ध मे बुतप्रस्त को हेतु माना है। यदि पाठ पुरफितन होता, तो गुरु जी लिखते, वह उपद्रवी है ओर मैं शान्ति चाहता हूं। किन्त ऐसा न लिख साफ लिखा है। वह मूर्ति पूजक है और मैं मूर्ति भंजक हूं।

पाठको को जानने के लिये यह उद्धरण लिख दिया है। ठीक क्या है या क्या होना चाहिये, इसका ठीक–ठीक निश्चय गुरुघर के विद्वान् ही कर सकते हैं।

इस पकार श्री गुरुग्रन्थ साहिब ओर दसम ग्रन्थ जी में अनेक शब्द इस प्रकार के हैं। आगे अन्य प्रतिष्ठित सिखों का पाठ लिखता हूं, ताकि निश्चय करना सहल हो।

1. किसे पुजाई सिला सुन्न कोई गोरी मढ़ी पुजावै।
तन्त्र मन्त्र पाखंड कर कलह क्रारेध वह वाद बधावै।
आपोधापी होइके न्यारे नयारे धरम चलावै।

कोई पूजे चन्द सूर कोई धरती आकास मनावै।
पउण पाणी वैसन्तरो धरम राज कोई त्रिपतावै।
फोकट धरमी भ्रम भुलावै। –भाई गुरदास दियां वारां 1, 18

2. पाहन की प्रतिमा को अन्ध कन्ध है पुजारी, अन्तर अज्ञान मति ज्ञान गुरु हीन है। –भाई गुरदास जी के कवित्त 485

3. पंडित तारा सिहं जी पटियाजला निवासी ने गुरमत निर्णयसागर नाम की पुस्तक लिखी है। उसके दसवें तरंग में मूर्ति पूजा पर विचार किया है उसका पाठ इस प्रकार है–

''वेद में जगन्नाथ, पद्मनाम, श्री रंग, आदि विष्णु की पाषाण मूर्तियों के इसी भंति शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य की मूर्तियों के श्रुति में कहीं नाम नहीं लिखे। इसी प्राकर मुख नासिकादि सहित बदरीनारायण आदि मूर्तियां और मुख नासिकादि रहित सालिग्राम, नरवदेश्वर, गोमति चक्र आदिकों के नाम तथा स्वरूप और स्थान वेद में कहीं नहीं लिखे। इसलिये मोक्ष की इच्छा वाला पुरुष बाह्य विग्रह का पूजन त्याग के हृदय में ही अरचन करें। अनय श्रुतियों में जहां इष्टापूर्त कर्म कह हैं अग्निहोत्र, तप, संतोष, वेद–पाठ, अतिथि सेवा, बलिवेश्वदेव यह कर्म इष्ट है।, वापी, मड़ाग, वेदमन्रि, अन्नसत्र, बाग यह पूर्त हैं। भगत लोग मूर्ति स्थपना बिना देवस्थान बनवावें। यह पूर्त कर्म में देव मन्दिर शब्द का भाव है। गुरुवों ने ताकी, मूर्ति की रीति निजमत मेंनहीं चलाई किन्तु वेद का तात्पर्य जो उपासना, ज्ञान में है, वी बताया। इस प्रकार वैदिक मत की प्रवृत्ति की ओर दसम गुरु ने जो दुर्गा का आवाहन किया, वह दुर्गा की पाषाण की मूर्ति नहीं पूजी, किन्तु एकान्त स्थान में बैठ के, अकाल के चरण शरण में रहने वाली जो शक्ति भगवती है, उसका आराधन किया। परमेसर रूप सालगराम हमारे हाथ में प्राप्त हुआ है, जो सबके कंछत फल देने वाला है, उसी में है, पाषाण रूप मूर्ति में नहीं। यदि मूर्ति में भाव माना जाय, तो गुरुओं और ाागतों के जो मूर्ति पूजा निषेधक शब्द हैं। वह निरर्थक हो जायेंगे जो इस प्रकार हैं–

हिन्दू मूले भूले अखुट जांही। नारद कहिआ मि पूज कराहीं।
अन्धे गूंगू अन्ध अन्धार। पाथर ले पूजहिं मुग्ध गवार।
ओह जां आप हुये तुम कहां तरावनहार।

—वार बिहागड़ा महला 1 श. 20

देवी देवा पूजिऐ भाई क्या मांगहु क्या देह।
पाहण नीर पखालिऐ भाई जलमहि बूडहि तेह।

—राग सोरठ अष्टपदिया महला 1 शब्द 4

यह शब्द पूर्व लिखा गया है, वहां ही देख लें।

इसलिये मूर्ति पूजन में तात्पर्य नहीं और मूर्ति पूजा हानि कारक भी है,

1. जैसे, जिस किसी ने चक्रवर्ती राजा को ग्राम पति जाना, वह उसकी दया का पात्र नहीं हो सकात, प्रत्युत न्यूनता जानने से कोप का पात्र होगा। इसी प्रकार जो व्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर को, थोड़े स्थान में रहने वाली जड़ मूर्ति में समझेगा, उस पर उसकी प्रसन्ता होनी कठिन है।

2. जैसे कोई बालक सच्चे पिता के सम्मुख मृत्तिक, पाषाण की मूर्ति रूप पिता को जन्मदाता जानकर पूजा करे, तो वह सच्चे पिता की प्रसन्नता का पात्र नहीं होता, वेस ही मूर्ति पूजक भी सच्चे पिता परमात्मा की प्रसन्नता के पात्र नहीं हो सकते। क्योंकि मूर्ति में परमेश्वर अपने सगुण विग्रहवत् अपना प्रवेश नहीं रखता, यदि रखता हो, ाते जो छाती पर पग रख कर मूर्ति बनाते है, उनको भक्षण कर ले, और भक्षण नहीं करता है इसलिये उसमें उसका प्रवेश नहीं है।

यदि कोई कहे, प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् प्रवेश होवे है, सो भी सभ्यक् नहीं। क्योंकि यदि प्राण प्रतिष्ठा से प्रवेश होवे, तो राम आदि का जो स्वभाव है, उसमें से कुद तो मूर्ति में होवे? और किंचित् भी नहीं होवे है। उनकी भोग्य वस्तु ो, वस्त्रों को, भूषणों को चोर चारी करके ले जावे है। वह उनको हटाता नहीं, इसलिये मूर्तियों में देवता का प्रवेश वास्तविक नहीं हाता है। वास्तव में वह मूर्ति निरजीव है, जड़ है, जड़ का पूजन पुराणों में भी तामस भक्ति लिखी है, इसलिये वेद के तात्पर्य हीन मूर्ति पूजा सर्वथा त्याज्य है।——''

पंडित तारासिंह जी ने पंजाबी भाषा में लिखा है। उसकी नागरी वा हिन्दी मैंने बनाई है। पण्डित जी मूर्ति पूजा को सर्वथा वेद विरुद्ध मानते हैं ओर गुरुमहाराज के सिद्धांत विरुद्ध भी मानते हैं, यह तो निर्णीत है। किन्तु

गुरु गोविन्द सिंह जी के विषय में जो दुर्गा पूजा में समाधान किया है। 'कि अकाल चरण शरण की शक्ति भगवति' का आराधन यिका था, यह चिन्तनीय है। यदि वह कुछ भी न लिखते तो अच्छा होता।

4. भाई कान्हसिंह जी गुूरमत प्रभाकर के पृष्ठ 603 पर लिखते है—

''जड़ अथवा चेतन सृष्टि नूं रिजनहार तुल्य इष्ट मान कर पूजण दा नाउं मूर्ति पूजा है, जिसदा सिख धर्म विच परम निषेध हे।

5. भाई संतोष सिंह जी गुरु प्रताप सूर्य प्रकाश ऋतु पांच अध्याय 38 में लिखते हैं—

''असुर भूत की सेवा तजे। पाहण की पूजा नहि जजे।
पाहन पूजा कलिका। भाउ। मढ़ी मसाणी झूठा सुआउ।।

जिन पुस्तकों के पाठ मैंने लिखे हैं। उन पुस्तकों में इसी भाव के पाठ और भी हैं, किन्तु मैं इतने पाठ ही पर्याप्त समझता हूं।

इसके आगे कुछ ऐसे पाठ भी लिखना उचित होगा, जो इसके विपरीत हैं। ताकि पाठकों को निश्चय करने में सरलता हो।

1. दूध कटोरै गड़वै पानी, कपल गाइ नामे दुह आनी।1।
दूध पीओ गोविंद राइ, दूध पीओ मेरे मन पति आइ।
नाहीत घर को वाप रिसाइ। 1। रहाउ।
सोइन कटोरी अमृत भरी, लै नामै हरि आगै धरी। 2।
एक भगुत करे हिरदय बसै, नामे देखि नाराण हसै। 3।
दूध पीआल भगत घर गइआ, नामे हरि का दरसन भइआ। 4।

—राग भैरउ नामदेव शब्द 3

2. इह विधि सुनके जाटरो उठ भगती लागा।
मिले प्रतख गुसाईआं धन्ना, बड भागा। —राग आसा धन्ना शब्द 2

इन दोनों शब्दों पर भाई गुरदास जी ने भी लिखा है और भाई गुरदास जी जो भाव प्रकट करते है।, वह मूर्ति पूजा सिद्ध करते हैं। उनका पाठ इस प्रकार हे।

कम किते पिउ चलिआ नामदेव नों आख सिधाया।
ठाकुर दी सेवा करी दुद्ध—पीआवण कह समझाया।।
नामदेव इसन न कर कपल गाई दुहे लै आया।
ठाकुर नो न्हावाल के चरणोदक जै तिलक चढ़ाया।।

हथ जोड़ विनती रे दुद्ध पीअहु जी गोविन्द राया।
निहचउ कर आराधिया होइ दयाल दरस दिखलाया।
भरी कटोरी नामदेव लै ठाकुर नों दुद्ध पीआया।
गाइ मुई जीवालीओन नामदेव दा छप्र पाया।
फेर देहुरा रक्खिओन चारवरन लै पैरी पाया।
भगत जनां दा करे कराया। —भाई गुरदासदीआं वारां, वार 10। 11

इसमें नामदेव का दूध पिलाना, नामदेव को मूर्ति में दर्शन होने का वर्णन है। आगे, कुछ अन्य काम, छप्पर बनाना, देहुरा फेरना आदि वही बातें हैं, जो भक्तमाल में मिलती हैं। इस भाव के शब्द श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी में भी हैं। अगला शब्द भी वैसा ही है। यथा—

दरसन वेखण नाम देव भलके उठ त्रिलोचन आवे।
भगति करन मिल दुई जणे नामदेव दर चलत सुणावै।।
मेरी भी कर वेनती दरसन देखां जे मिस भावे।
ठाकुर जी नो पुछि ओस दरसन किवें त्रिलोचन पावै।।
हसके ठाकुर बोलिआ नामदेव नो कहि समझावे।
हथ न आवे भेट सो तुस्स त्रिलोचन मैं मुंहि लावै।
हउ अधीन हां भगत दे पहुंचन हंधां भगति दावै।।
होई विचोला आण मिलावै। —भाई गुरदास दीआं वारां 10।12

इस पाठ में भी मूर्ति मेंप्रगट होने का भाव है।

बाह्मण पूजे देवते धन्ना गऊ चरावण आवे।।
धन्ने डिठाचलत एह पच्छै वाहमण आख सुणावै।
ठाकुर दी सेवा करे जो इछे सोई फल पावै।।
धन्ना करदा जोदड़ी मैं भी देह इक जे तुध भावै।
पत्थर इक पलेट कर दे धन्ने नो गैंल छड़ावै।।
ठाकर नों न्हावाल कै छाह रोटी लै भोग चढ़ावै।
हथ जोड़ मिन्नत करै पैरी पै पै बहुत मनावै।।
हऊ भी मुंह न जठालसां तू रुठा मैं किहुन सुखावै।
गोसाई परतख होइ रोआी खाई छाहि मुहि लावै।।
भोला भत गोविन्द मिलावै। —भाई गुरदासदीआं वारां 10। 13

इसमें मूर्ति के स्थान पर ब्राह्मण ने धन्ने को पत्थ दिया। उसमें किसी ने देवता का आवाहन भी नहीं किया, उससे ही धन्ने को भगवान् का साक्षात्कार हुआ, और धन्ने द्वारा दी गई छाछ रोटी उसने खाई। इसका वर्णन है।

यह पाठ मूर्तिपूजा को सिद्ध करते हैं, इस कारण इन पर विचार होना आवश्यक है।

मेरी सम्मत यही है गुरु जी का सिद्धान्त मूर्ति पूजा के सिरुद्ध ही है। वह मूर्ति पूजक न थे।

कई लोग प्रश्न करते हैं, सिखों में री गुरुग्रन्थ साहिब जी की पूजा मूर्ति समान ही होती है। क्यश वह मूर्ति पूजा नहीं है?

इस विषय में जो सिखों का सिद्धान्त मैंने सुना हे, पढ़ा है, वह लिखता हूं। सिख श्री गुरु ग्रन्थ सहिब जी को, गुरु की देह मानते हैं, वह यह पाठ बतलाते हैं।

आज्ञा भई अकाल की तभी चलायो पंथ।
सब सिखन को हुक्म है गुरु मानियो ग्रंथ।
गुरु ग्रन्थ को मानियो, प्रगट गुरां की देह।
जाका हिरदे सुध है खोज सबद में लेह।

यह पाठ किसीगुरु का नहीं, जिन सिखों ने सिखों के रहितनामे लिखे, उन्होंने यह लिखा है। नामधारी, निरंकारी सिखो को छोड़ कर शेष सब सिख इसे मानते हैं। इस प्रकार श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में उनकी भावना गुरु की देह की है।

यह भावना मुख्यतया उस समय स्थिर होती हे जब कोई सिख श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की भेंट देकर उसे लाकर अपने गृह वा गुरद्वारे में रखता है। अथवा जि समय भेंट देकर प्राप्त कर लेता है। यदि ऐसा न मानाा जाय, तो कठिनाई है। क्योंकि पुस्तक के छपते समय, बांधते समय सत्कार होना कठिन ही हनी असम्भव है। पहले सिख धूप, आरती, चंवर आदि करते थे और भोग भी लगाते थे किन्तु इस समय शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने जो 'सिख रहित मरयादा' नामक पुस्तक लिखी है, उसमें इन बातों का निषेध है। यथा—

3. श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी नूं सनमान नाल प्रकासिया पढ़ि आ अते संतोखिआ जावे। प्रकाश लई जरूरी है, कि स्थान साफ सुथरा होवे। ऊपर

चांदनी होवे, प्रकाश मन्जी साहिब जी दी दे नूं संभाल के प्रकाशन लई गदले आदि सामान वरते जाण अते ऊपर लई रुमान होवे। जद पाठ न हुन्दा होवे, तां उते रुमाल पिआ रहे। प्रकाश बोले चौंरे भी चाहिये।

स। ऊपर दसे सामान तो इलावा धूप या दीवे मचाके आरती करनी, भोग लाउण, जोता जगाउणीआ, टल खडकाउणे आदि कर्म गुरमत अनुसार नही। हां स्थान नूं सुगन्धित करन लई, फुल, धूप आदि सुगन्धीआं वरतणीआं विवरजत नहीं। करमे अन्दर रोशनी लई तेल, घी जां मोमबत्ती, बिजली, लम्प आदि जगा लैणे चाहीदे हन। पृष्ठ 4

भाई रणधीरसिंह जी ने किसी समय मुझे एक पुस्तक दी थी। जिसमें यही विषय था कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की मूर्ति पूजा नहीं है यह तो श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी में गुरु की देह की भावना करके उसका सत्कार है। यही सिखों के विचार हैं। यह इसे मूर्ति पूजा नहीं मानते हैं।

— : —

7.

जीव

जीव शरीरधारी माना जाता है। शरीर भोगायतन अर्थात् भोग भोगने काक स्थान है। शरीर जड़ है और जीव चेतन है। शरीर सादि सान्त है और जीव अनादि अनन्त है। शरीर मे रह कर जीव जैसे भोग भोगता है वैसे कर्म भी करता है। यह संसार जीव के कर्म करेन और उनका फल भोगने का क्षेत्र हे। शरीर के नाश समय अर्थात् मृत्यु समय जीव शरीर से पृथक् हो कर अपने कर्मानुसार दूसरे शरीर को प्राप्त करता है इसी का नाम पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म पर पृथक् पृथक् लिखा जायगा।

सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे और सातवें समुल्लास में जीव विषयक लिखा है, सत्यार्थ प्रकाश का पाठ आगे लिखता हूं—

''इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगानि।

—न्याय. अ. 1। आ. 1। सूत्र 10

जिसमें (इच्छा) राग (द्वेष) वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख(ज्ञान) जानना गुण हों, वह जीवात्मा कहाता है। वैशेशिक में इतना विशेष है—प्राणापाननिमेषोन्मेपजीवनमनोगेतीन्द्रियान्तर्विकारसुखदुखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि। —वे. अ. 3। आ. 2। सूत्र 4

(प्राण) भीतर से वायु का निकलना (अपान) बाहर से वायु का भीतर लेना (निमेष आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना, उनसे विषयों का ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुध, तृषा, ज्वर, पीड़ाआदि विकारों का होना, सुख दुख, इच्छा, द्वेष और प्रथत्न ये सब आत्मा के लिंग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

—सत्यार्थ पकाश समुल्लास 3

प्रश्न— जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र।

उत्तर—अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र हैं जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है।

प्रश्न– स्वतन्त्र किस को कहते हैं?

उत्तर– जिसके आधीन शरी, प्राण, इन्द्रिया और अन्तःकरणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो, तो इसको पाप–पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी ओर सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मार के अपराधी नहीं होते, वेसे परमेश्वर की प्रेरणा ओर आधीनता से काम सिद्ध हों, तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक–स्वर्ग अर्थात् दुःख–सुख की प्राप्ति भी ईश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्र विशेष से किसी को मार डाला, सो वही मारने वाला पकड़ा जाता है, ओर वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप–पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने मं जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करेन में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःखरूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

प्रश्न– जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता, तो जीव कुछ भी न कर सकता, इसलये परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है

उत्तर– जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है, जैसा ईश्वर और जगत् का उपदान कारण नित्य है और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन, वचन, कर्म से पाप–पुण्य करता हे, वह भोगता है, ईश्वर नहीं। जैसे किसी कारीगर ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया, उसकी दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई, उससे किस सिपाही ने तलवार ले ली, फिर उससे किसी को मार डाला। अब यहां जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उससे लेने, तलवार बनाने वाले और तलवार को पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देतरा, किन्तु जिसने तलवारे से मारा, वही दण्ड पाता है। इसी प्राकर शरीर आदि की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता, किन्तु जीव का भुगाने वाला होता है जो परमेश्वर कर्म करता, तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इस लिए जीव

अपने काम करने में स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है, वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है।

प्रश्न– जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

उत्तर– दोनों चेतन स्वरूप हैं, स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी ओर धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सबको नियम में रखना, जीवों को पाप, पुण्यों के फल देना आदि धर्म युक्त कर्म है और जीवों के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्प विद्यादि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्य ज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं और जीव के–

इच्छाद्वेषयत्नसुखदु व्ज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति। –न्याय. 1। 1। 10

प्राणपाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्चात्मानो लिंगानि। –वैशेषिक। 3। 2। 4

(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) वैशेषिक में (प्राण) प्राण वायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर लेना (निमेष) आंख को मीचना (उन्मेष) आंख को खोलना (मन) निश्चय, स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों का चलना (अन्तर्विकार) भिन्न–भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि गुण होना, ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्यों कि वह स्थूल नहीं है। जब तक आत्मा देह में होता हे, तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हों और न हों वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है। वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है। –सत्यार्थ प्रकाश सातवा समुल्लास

आर्योद्देश्यरत्नमाला में जीव का स्वरूप इस प्रकार लिखा है–

जीव का स्वरूप जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है, वह जीव कहाता है। –रत्न 77

इन पाठों में महर्षि ने जीव का वर्णन किया है, सत्यार्थ प्रकाश में और प्रकार से भी जीव के स्वरूप पर विचार किया है। उसे यहां लिखना

उचित न समझ कर नहीं लिखा।

आगे श्री गुरु ग्रन्ी साहिब में से जीव परक कुछ शब्द लिखे जायेंगे।

1. उडियां हंस दसाइ राह। आइया गइया मुहिआ नाउ।

—राग माझ बार म. 1 वार 1

2. जीउ पाइ तन साजिया रखिया वणत वणाइ।
अखीं देखे जिहवा बोले कन्नी सुरत समाइ।
पैरी चले हथीं करणा दित्ता पैने खाइ।
जिन रचि रचिआ तिसहि न जाणौ अन्धा अन्धा कमाइ।

—वार माझ म. वार 2

3. जो आवहि से जाहि फुनि आइ गए पछताहि।
लख चौरासीह मेदनी घटै न बधै उताहि।

—राग रामकली म. 1 दखणी ओकार 43

4. मुत्री देह उरावणी जा जीउ विचहु जाइ।

—श्री राम महला 1 शब्द 14

5. न जीउ मरै न डूवै तरे। —राग गौडी गहला 1 शब्द 2

6. हंस चलिया तू पिछे रहीएह छुटड़ होइ अहि नारी।

—राग गौड़ी महला 1 शब्द 13

7. काइया हंस क्या प्रीति है जि पइआ ही छड जाइ।
एसनो कूड बोल के खबालिऐ जि चलदिआं नाल न जाइ।

—गुजरी वार मह. 3 वार 7

8. कहु नानक इह जीउ करण बंध होई।

—राग भैरउ महला 3 शब्द 1

9. जीउ पाइ पिंड जिन साजिय। दिता पैनण खाण।

—राग सोरठ महला 5 शब्द 44

10. दुलभदेह पाई बडभागी। नाम न जपहि ते आत्म घाती।

—राग गौड़ी महला 5 शब्द 111

11. मरण हार एह जीअरा नाहीं।

—राग गौड़ी महला 5 शब्द 112

12. ओह वैरागी मरै न जाइ। हुकमै वध कार कमाइ।

—राग आसा महला 5 शब्द 82

13. ना जीउ मरे न कबहूं छीजै।

—राग वडहंस महला 5 शब्द 6

14. जागि लेहु रे मना जाग लेहु कहा गाफल सोइआ।
जो तन उपजिया संग ही सो भी संग न होइआ।
मात पिता सब बंध जन हित जासउ कीना।
जीव छुटकियो जब देहते डार अग्नि में दीना।

—राग तिलंग महला 9 शब्द 2

15. लख चउरासीह जोनि भ्रम आइयो।

—राग गौडी कबीर जी शब्द 62

16. लट छिटकाए तिरीआ रोवे हंस अकेला जाई।

—राग आसा कबीर जी शब्द 9

17. मरघट लउ सब लोग कुटंव भइयो आगे हंस अकेला

—राग सोरठ कबीर जी शब्द 2

18. काचे करवे रहे न पानी। हंस चलिआ काइआ कमलानी।

—राग सूही कबीर जी शब्द 2

19. कह कबीर एह राम की अंस। जस कागद पर मिटे न मंस।

—राग गौड कबीर जी शब्द 5

20. पंच किरसानवा भाग गएण लै बांधियो जीव दरबारी।

—मारू कबीर जी शब्द 7

21. जल की मीति पवन का थंभा रक्त बूंद का गारा।
हाड़ मास नाड़ी का पिंजर पंखी वसे विचारा।

—राग सोरठ रविदास शब्द 6

22. हंस चलसी डूंमणा अहितन ढेरी थीसी।

—राग सूही फरीद जो शब्द 2

इन सब शब्दों में जीव का वर्णन है। इने अतिरिक्त जीव विषयक और शब्द भी हैं। मैं इतने ही पर्याप्त मानकर इसे समाप्त करता हूं इनमें जीव को न मरने वाला, कम्र करने वाला आदि गुण युक्त लिख है।

— + —

8.

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म शब्द का भाव है– इस शरीरको छोड़ कर पुनः जीव का दूसरे शरीर को प्राप्त करना। वैदिक सिद्धान्त में पुनर्जन्म का सिद्धांत माना जाता है।

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में इस विषय पर भी विचार किया है। उसमें से कुछ लिखता हूं। विशेष रुचि वाले वहां ही पढें।

प्रश्न– जन्म एक है वा अनेक?

उत्तर– अनेक

प्रश्न– यदि अनेक हां, तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं?

उत्तर– जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिए स्मरण नहीं रहता और जिस मन से ज्ञान करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्वजन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, पांचवें वर्ष से पूर्व तक जो जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यों नलहीं कर सकता? और जाग्रत वा स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, तब जाग्रत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता। और तुम से कोई पूछे, कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पांचवें महीने के नवम दिन दस बजे पर पहली मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र शरीर, किस ओर किस प्रकार का था? और मन मेंक्या विचार था? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्वजन्म की बातों के स्मरण में शंका करना केवल लड़कपन की बात है ओर जो स्मरण नहीं होता है, इसी से जीव सुखी है, नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख देख दुखित होकर मर जाता। ....

प्रश्न– मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एकसा है वा भिन्न जाति के?

उत्तर– जीव एक से हैं, परन्तु पाप–पुण्य के योग से मलिन और

पवित्र होते हैं।

प्रश्न– मनुष्य का जीव पश्वादि मे और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नही?

उत्तर– जीव एक से है।, परन्तु पाप–पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

प्रश्न– मनुश्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर मे जाता आता है वा नहीं?

उत्तर– हां जाता आता है, क्योंकि जब पाप बढ़ जाता पुण्य न्यून होता है। तब मनुश्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता हे तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य–पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य जन्म होता है। इसमें भी पुण्य पाप के उत्तम मध्यम, निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीर आदि सामग्री वाले होते हैं, और जब अधिक पाप का फल पश्यादि शरीर में भोग लिया है, पुनः पाप–पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोगकर फिर भी मध्यस्थ पुरुष के शरीर में आता है। जब शरीर से निकलता है उसी का नाम मृत्यु और शरीर के साथ संयोग होने का नाम जन्म है। –सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 9।

आर्योद्देश्य रत्नमालामें जन्म, मरण इस प्रकार लिखा है।

12. जन्म–जिसमें किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म करने में समर्थ होता है। उसको जन्म कहते हैं।

13. मरण–जिस शरीर को प्राप्त होकर जीव क्रिया करता है, उसस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग हो जाना है, उसको मरण कहते हैं।

पुनर्जन्म विषय में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के शब्द आगे लिखे जाते हैं।

1. इह जीव बहुते जन्म भ्रमिआ ता सतगुर शब्द सुणाइआ।

–आसा दी वार महला 1 वार 4

2. हउमै एई बंधना फिर फिर जोनि पाहि।

—राग आसा वार महला 1 वार 7

3. जिउ आरणि लोहा पाइ भन्न घड़ाइऐ। तिउ साकत जोनि पाइ भवे भवाइऐ। —राग सूही काफी महला 1 शब्द 4

4. जुड़ जुड़ बिछुड़ जुड़े। जीवि जीवि मुए मुए जीवे।
केतियां के बाप केतियां के बेटे केते गुरु चेले हूए।
आगे पाछे गणत न आवे क्या जाति क्या हुण हुए।

—राग सांरग वार महला 1 बार 3

5. बहु जोनि भउदा फिरे जिउं सुंञे घर काउ।

—श्री राग महला 3 शब्द 43

6. न मुख करम कमावणे हउमै जले जलाइ।
जमण मरण न चूकई फिर फिर आवे जाइ।

—श्री राम अष्टपदिया महला 3 अष्टपदि 23

7. वृथा जन्म गवाइया मर जमहि वारो बार।

—श्री राग अष्टपदिया महला 3 अष्टपदि 25

8. जम का फाहा गलहु न कटिऐ फिर फिर आवे जाइ।
मन मुख किछु न सूझे अं धुले पूर्वलिखिया कमाइ।

—श्री राग की वार महला 3 वार 9

9. लख चउरासीह भ्रमदे मन हठ आवे जाइ।
गुर का शब्द न चीनिओ फिर फिर जोनि पाइ।

—राम गौड़ी महला 3 शब्द 36

10. ऐथे नावहु भुलिया फिर हथ किथाउं न पाइ।
जोनि सभ भबाइअन विष्टा माहि समाइ।

—राग मारू महला 3 शब्द 2

11. ओई फिर फिर जोनि भवाइअहि विच विष्टा कर विकराला।

— श्री राग महला 4 शब्द 66

12. जिन दरसन सतगुर सतपुरुष न पाइआ ते भाग हीण जम मारे। ते सूकर कूकर गर्दभ पवहि गरभ जोनि दयि मारे महा हत्यारे।

—राग गुजरी महला 4 शब्द 2

13. जिन हरि हरि नाम न चेतियो ते भाग हीण मर जाइ।
ओह फिर फिर जोनि भवाई अहि मर जमे आवे जाइ।

—राग मारू महला 4 शब्द 3

14. लख चौरासीह भ्रमतिआ दुलभ जनम पाइ ओही।

—श्री राग महला 5 शब्द 92

15. कई जनम भए कीट पतंगा।
कई जनम गज मीन कुरंगा।
कई जनम पंखी सर्व होइओ।
कई जनम हैवर बृख जोइयो। 1।
मिल जगदीस मिलन की वरीया।
चिरंकाल एह देह संजरीया। 1। रहाउ
कई जनक सैल गिरि करिआ।
कई जनम गरभ हिरिखरिया।
कई जनम साख कर उपाइआ।
लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ। 2।

—राग गौड़ी महला 5 शब्द 72

16. अनिक जन्म बहु जोनि भ्रमिआ बहुर बहुर दुःख पाइआ।

—गौड़ी वैरागण महला 5 शब्द 130

17. जो जो जोनि आइओ तिह तिह उरझाइयो माणस जनम संजोग पाइआ। —राग धनासरी अष्टपदियां महला 5 अष्ट. 1

18. अरथावर जंगम कीट पतंगा अनिक जनम किए बहुरंगा। एसे घर हम बहुत वसाए। —राग गौड़ी कबीर जी श. 13

19. परधन परतन परती निन्दा पर अपवाद न छूटै।
आवागवन होत है फुनि फुनि इह परसंग न तुटै।

—राग रामकली कबीर जी शब्द 8

20. चारि पाव दुइ सिंग गुंग मुख तव कैसे गुन गई है।

—राग गुजरी कबीर जी 1

21. भ्रमत फिरत बहु जनम विलाने तन मन धन नहीं धीरे।
लालच विख काम लुबधराता मन विसरे प्रभ हीरे।

—राग आसा धन्ना शबद 1?

इस प्रकार पुनर्जन्म के कथन करने वाले अनेक शब्द हैं।

— + —

9.

वेद

संसार की पुस्तकों में वेद सबसे पुरानी पुस्तक है। यह बात निर्विवाद है। वेद में किसी सम्प्रदाय वा पन्थ का उल्लेख नहीं है। इसलिये वेद मनुष्य मात्र के लिए है। वेद धर्म ग्रन्थ है। वह मनुष्य को उसका धर्म सिखाता है।

वेद संसार के आरम्भ मे ंऋश्ज्ञियों द्वारा प्रगट हुआ, अर्थात् परमात्मा ने ऋशियों के हृदय में वेद ज्ञान दिया। इस कारण वेद किसी मनुष्य क बनाये हुये नहीं, वेद ईश्वर का ज्ञान है।

वेद चार हैं, उनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद हैं।

वेद चार ऋश्ज्ञियों पर प्रगट हुये हैं। उनके नाम, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा हैं। अग्नि पर ऋग्वेद, वायु पर यजुर्वेद, आदित्य पर सामवेद और अंगिरा पर अथर्ववेद प्रकट हुआ।

अग्नि, वायु भूतों के नाम भी है, परन्तु याहं यह ऋषियों के नाम हैं, भूतों के नहीं। इसी प्रकार आदित्य भी सूर्य का नाम न होरक एक ऋषि का नाम है, यह सिद्धान्त है।

वेद मे जो कुछ लिखा है, वह युक्तियुक्त है, जैसा कि ऋशि कणाद ने अपने दर्शन में, 'बुद्धि पूर्वा वाक्कृतिर्वेदे' लिखा है।

एक पक्ष ऐसा भी है, जो वेदों का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ, ऐसा मानता हे। परनतु ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त है, वेद चार ऋशियों पर प्रकट हुये ओर ब्रह्मा ने चारों वेद पढ़े, जो चारों वेदों का जानने वाला हो, उसकी संज्ञा ब्रह्मा हैं। ब्रह्म पर वेद प्रगट नहीं हुये।

वेद स्वतः प्रमाण है, अन्य सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। वेद की प्रमाणता के लिये अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं, यह वेद की स्वतः प्रमाणता है। अन्य पुस्तक वेदानुसारी होने पर प्रमाण, वेद विरुद्ध होने पर अप्रमाण है, यही उनमें परतः प्रमाणता है।

ऋशि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में वेद विषय पर यह लिखा है–

'यस्रमादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकपन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वांगिरसो मुखम्। स्कम्भन्तब्रूहि कतम् स्विदेव सः।

–अथर्व। कांड 10 प्र. 23। अनु. 4। मंत्र 20

जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुवेद, सामवेद ओर अथर्ववेद प्रकाशित हुये हैं, वह कौन सा देव है? इसका (उत्तर) जो सबको उत्पन्न करके धरण कर रहा हे, वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान वयदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

–यजु. 40, 8

जो स्वयम्भू, सव्रव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकर परमेश्वर है, वह सनातन जीव रूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीति पूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

प्रश्न–परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार?श

उत्तर–निराकार मानते हैं।

प्रश्न–जब निराकार है,तो वेदविद्या का उपदेश बिना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हा सका होगा? क्योकि वर्णों के उच्चारण मे ताल्वादि स्थान जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

उत्तर– परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेद विद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है, क्यांकि मुख, जिह्वा के वर्णोच्चारण अपने से भिन्न केबोध होने के लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के व्यापार करे बिना ही मन मे अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियो से मूंद के देखो, सुनो कि बना मुख, जिह्वा ताल्वादि स्थानों के कैसे–कैसे शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को अन्तर्यामी रूप से उपदेश किया है। किन्तु केवल दूसरों को समझाने के लिऐ उच्चारण करने की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है, तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है, इस लिए ईश्वर में यह दोष नहीं आ सकता।

प्रश्न–किनके आतमा में कब वेदों का प्रकाश किया?

उत्तर–अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः

शतपथ। 11 4। 2। 3

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियो के आत्मा में क्यों कहा?

उत्तर–ब्रह्मा के आतमा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया, देखो, मनु ने क्या लिखा है–

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्। मनु 1। 23

जिस परमात्मा ने आदि सृश्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारो ऋशियों के द्वारा चारो वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

प्रश्न– उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया, अन्य में नहीं, इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर– वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रातम थे, अन्य उनके सदृश नहीं थे, इसलिये पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया।

प्रश्न–किसी देश भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया?

उत्तर–जो किसी देश भाषा में प्रकाश करता, तो ईश्वर पक्ष पाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाष में प्रकाश करता उन को सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने पढ़ाने की होती, इसलिये संस्कृत में ही प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेद भाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया।

प्रश्न–वेद ईश्वरकृत है, अन्य कृत नहीं, इसमें क्यका प्रमाण?

उत्तर–जेसा ईश्वर पवित्र, र्वविद्यावित्, शुद्ध गुण, कर्म में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो, वह ईश्वरकृत अन्य नहीं, और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो, वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्मल ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रन्ति रहित ज्ञान का प्रतिपादन हो, वह ईश्वरोक्त, जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टि क्रम रखा है, वैसा ही ईश्वर, सृष्टिकार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमे होवे, वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है ओरजो

प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अवरुिद्ध हुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो इस प्रकार के वेद हैं। अन्य बायबल, कुरानादि पुस्तकें नहीं।

प्रश्न–वेद को ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्यांकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जातरक पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

उत्तर– कभी नहीं बना सकते, क्योंकि बिना कारा के कार्योपत्ति का होना असम्भव है। जैसे जंगली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वानि् नहीं होते, और जब उनको कोइ शिक्षक मिल जाय, तो विद्वान् हो जाते हैं, ओर अब भी किसी से पढ़े बिना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेद विद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ातजे, तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश, अवद्विान् व पशुओं के संग में रख देवें, तो वह जैसा संग है वैसा ही हो जायगा। इसका उदाहरण जंगली भील आदि हैं. ....।

परमात्मा से सृष्टि की आदि में विद्या, शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में होते आये।

स पूव्रेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

–योग सूत्र समाधि पाद सूत्र 26।

जैसे वर्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़ ही के विद्वान होत हैं। वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋशियों का गुरु अर्थात् पढ़ाने हारा हे, क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञान रहित हो जाते हैं, वैसा परमेश्वर नहीं होता। उसका ज्ञान नित्य है। इसलिये यह निश्चित जानना चाहिए, कि बिना निमित्त नेमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता।

प्रश्न–वेद संस्कृत भाषा में प्रकाशित हुए, और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृत भाष को नहीं जानते थे, फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

उत्तर– परमेश्वर ने जनाया, और धर्मात्मा, योगी, महर्षि लोग जब जब जिस जिसके अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधि स्थित हुए, तब तब परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों के आत्म में वेदार्थ प्रकाश हुआ, तब ऋषि

मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहास पूर्वक ग्रंथ बनाये। उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रंथ होने से ब्राह्मण नाम हुआ और–

ऋषयो (मन्त्रदृष्टयः) मंत्रान्सम्प्रादुः।। निरुक्त 1। 20

जिस जिस मंत्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी इसलिए अद्यावधि उस उस मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है। जो कोई ऋश्झियों को मंत्रकर्ता बतलावे उसको मिथ्यावादी समझें। वे तो मंत्रों के अर्थ प्रकाशक हैं।

प्रश्न–वेद किन ग्रंथों का नाम है?

उत्तर–ऋक्, यजुः. साम और अथव्र मंत्र संहिताओं का, अन्य का नहीं। इसमें निम्न बातें हैं–

1. वेद ईश्वर के दियेे हुए हैं, किसी मनुष्य के बनाये हुए नहीं।

2. वेद अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नाम क ऋशियों को दिये गये थे।

3. वेद चार हैं। नाम ऋक्, यजुः साम और अथर्व है।

4. वेद धर्म पुस्तक है। मनुष्यों को धर्म की शिक्षा देता है। स्वतः प्रमाण है। आगे यह लिखा जायगा, श्री गुरुग्रंथ साहिब जी इस विषय में क्या कहते हैं? वेद ईश्वर के दिये हुए हैं।

1. ओंकार ब्रह्मा उत्पति। ओंकार किया जिन चिति।
ओंकार सैल जुग भए। ओंकार वेद निरमए।
ओंकार शब्द उधरे। ओंकार गुरमुखि तरे।

–राग रामकली महला 1 ओंकार शब्द 1

वेद ईश्वर के दिये हैं और चार हैं–

2. चदथ उपाए चारे वदा। खाणी चारे वाणी भेदा।

–राग बिलावल महला 1 थिति।

3. चचे चार वेद जिन सानजे चारे स्वाणी चार जुगा।

–राग आसा महला 1 पटी लिखी शब्द 9

4. ऊर्ध मूल जिस साख तलाहा चार वेद जिस लागे।

–गुजरी अष्टपदियां मह. 1 अष्ट. 1

5. साम वेद, ऋग्, जजुर, अथर्वण। ब्रह्मे मुख माइया है ेगुण। ताकी कीमत कह न सकै को तिउ बोले जिउ बोलाइदा।

–मारु सोलहे महला 1 शब्द 17

6. ओंकार उत्पाती। किया दिनस सभ राती।
वण तृण त्रीावन पाणी। चार वेद चारे खणी।
खंड दीप सीा लोआ। एक कबावे ते सभ होआ।

–राग मारु महला 5 शब्द 17

7. हरि आज्ञा होए वेद पाप पुन्न बीचारिआ।

–मारू डखणे महला 5 शब्द 1

8. चारे वेद होए सचिआर –आसा दी वार महला 1 वार 13

9. चतरवेद मुख वचनी उचरे। –राग गौड़ी महला 5 शब्द 164

10. चतुरवेद पूरन हरि नाइ। –रामकली महला 5 शब्द 17

11. चार पुकारहि न तू माने। –रामकनली महला 5 शब्द 131

वेद किसको दिये–

13. ब्रह्म विशन महस देव उपाइआ। ब्रह्मेदित्ते वेद पूजा।

–राग मलार वार महला 2 वार 3।

14. चारे वेद ब्रह्मे नो फुरमाइआ।

–मारु सोलहे महला 3 शब्द 22

15. इसी प्रकार ब्रह्मे को उपदेश कहने वाले अनेक शब्द हैं। एक शब्द है जिसमें चार प्रकट होते हैं, वह यह है–

16. चारे दीवे चहु हथ दीए एका एकी वारी।

–वसन्त हिंडोल महला 1 शब्द 1

इसका भाव चार दीवे, चार वेद, चहु हथ दीए अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को दिये, एक बार ही। अर्थात् सृष्टि के आरम्भ मे ंचार वेद चार ऋशियों को दिए गये हैं। अन्यथ ब्रह्मा को वेद दिये गये ऐसे तो अनेक शब्द हैं।

वेद प्रमाण है–

17. वे वखान कहहि इक कहिये। ओह वे अन्त अन्त किन लहिए।

–वसन्त अष्टपदियां मह. 1 अ. 3

18. वेदु पुकारे वाचीऐ वाणी ब्रह्म विआस। मुनि जन सेवक साधिका

नाम रते गुण तास। सच रते सिजिण गए हउ सद वलहारै जासु।

—श्री राम अष्टपदियां महला 1 अष्ट. 7

19. केहा कंचन तटै सार। अग्नि गंढ पाए लोहार।
गोरी सेती तुटै भतार। पुती गंढ पाए संसार।
राजा मंगे दिते गंढ पाइ। भुखिया गंढ पवे जा खाइ।
कालां गंढ नदियां मीह झील। गंढ परीती मिठे बोल।
वेदां बंढ बोले सच कोइ। मुइयां गढ़ नेकी सत होइ।
एत गंढ वरत संसार। मूरख गए पवे मुहि मार।

—माझ वार महला 1 वार 12

20. दीवा वले अन्धेरा जाइं। वेद पाठ मति पापं खाइ।
उगवै सून न जापै चन्द। जहां गिआन (ज्ञान) प्रगाम अज्ञान मिटन्त।

इस पाठ में वेद पाठ द्वारा मति के पाप नाश होने का वर्णन है। इसके साथ ही अगले पाठ में इसके विरुद्ध है। यथा—

वेद पाठ संसार की कार! पढ़ पढ़ पंडित करहि वीचार।
विन बूझे सभ होहि खुआर। नानक गुरमुखि उतरस पार।

—राग सूही वार म. 1—17

इसका भाव यही है। यदि पंडित पढ़ता, विचार करता है और परमात्मा कोनहीं जानता, तो वह दुःखी होगा। संसार न तर सकेगा। ऐसा न मानें तो दोनों शब्दों की संगति नहीं बनती।

21. वेद पुकारै पुन्न पाप सुरग नरक का वीउ।
जो वीजै सो उगवै खांदा जाण जीउ।

—राग सारंग वार महला 1 बार 16

22. असंख ग्रंथ मुखि वेद पाठ। —जपुजी 17

23. गुरमुखि परचे वेद वीचारी।

—राग रामकली सिध गाष्ट शब्द 28

24. भेखी हथ न लभई तीरथि नहीं दाने।
पुछहु वेद पंडतियां मुठी विन माने।

—राग मारु अष्टपदियां महला 1 अष्टपदि 6

25. मन हठ किने न पाइयो पुछहु वेदां जाइ।

—श्री राग वार महला 3 वार 10

26. स्मृति सासत वेद बखाणै। भरैं भूला तत न जाणै।

—राग माझ अष्टपदियां मह. 3 अष्ट 18

27. सासत स्मृति सोधि देखहु कोइ। विण नावै को मुक्ति न होइ।

—राग माझा अष्टपदियां महला 3 अष्टपदि 1

28. वेदा महि नाम उत्तम सो सुणहि नाहिं फिरहि जिउ बेतालिया। कहे नानक जिन्हां सच तजिया कूड़े लागे तिनी जनम जूए हारिया।

—राग रामकली महला 3 आनन्द 19

29. हरि जीउ अहंकार न भावई वेद कूक सुणावहि।

—राग मारु वार महला 3 वार 9

30. जुगि जुगि आपो आपणा धर्म है सेध देखहु वेद पुराण।

—राग विलावल महला 3 शब्द 4

31. सासत वेद पुराण पुकारहि धरम करहु षअ करम दृड़इया।

—राग गौड़ी वार महला 4 वार 12

33. वाणी ब्रह्म वेद धरम दृडहु पाप तजाइया बल राज।

—सूही छंत महला 4 शब्द 2

34. दस अठ चार वेद सभ पूछहु जन नानक नाम छ डाई जीउ।

—मारु महला 4 शब्द् 8

35. स्मृत सासत वेद बखाने। जोग ज्ञानसिध सुख जाने । नाम जपत प्रभ सिउ मन माने। —राग गौड़ी महला 5 शब्द 111

36. वेद पुराण स्मृत भने। सभ ऊच विराजत जन सुने। सगल अवस्थान मैं भीतर चीन। राम सेवक भै रहित कीन।

—गौड़ी महला 5 शब्द 144

37. सासत स्मृत वेद बीचारे महा पुरुषन इउ कहिआ। बिन हरि भजन नहीं निस्तारा। सुख न किन हूं लहिआ।

—राग गौड़ी म. 5 श. 162

38. वेद सासतजन पुकारहि सुनै नाही डोरा।

—राग आसा महला 5 शब्द 152

39. सासत वेद स्मृति सभि सोधे जभ एका बात पुकारी। बिन गुर मुक्ति न कोऊ पावे मनि बेखेहु कर बीचारी।

—गुजरी महला 5 शब्द 2

40. स्मृति वेद पुरान पुकारन पोथीयां। नाम बिन सीा कूड़ गाली होछीयां। —राग सूही महला 5 अष्टपदियां अष्ट. 5

41. स्मृति सासत्र वेद पुरान। पारब्रह्म का करहि बखियाणा।

—गौंड महला 5 शब्द 17

42. सन्त सभामिल करहु बखिआण। स्मृति सासत वेद पुराण।

—रामफली कहला 5 शब्द 54

43. थोखे सासत्र वेद सभ आनन कथ तउ कोइ।

—राग गौड़ी महला 5 बावन अखरी 20

44. वेद वखिआन करत साधु जन भागहीन समझत नहीं खलु। ?

—टोड़ी महला 5 शब्द 26

45. चर पुकारहि न तू मानहि। षट भी एका बात बखाने।

—रामकली महला 5 शब्द 12

46. कहंत वेदा गुणंत गुणीया सुणत बाला वह विधि प्रकारा। दृडंत सुविद्या हरि हरि कृपाला। —सलोक सहस्कृति महला 5। 14

47. वेद पुराण सासत्र वीचारं। एकंकार नाम उरधारं। कुलह समूह सगल उधारं। वडभागी नानक को तारं। —गाथा महला 5। 20

48. कोई माई भूलिओ मन समझावै। वेद पुरान साध संग सुनकर निमिष न हरि गुण गावै। —राग गौड़ी महला 9 शब्द 6

49. वेद पुरान पढ़े को इह गुण सिमरे हरि को नामा।

—राग गौड़ी महला 9 शब्द 7

50. वेद पुरान जास गुन गावत ताको नाम हिये में घर रे।

—गौड़ी महला 9 शब्द 9

51. कल में एक नाम कृपानिधि जाहि जपै गति। और धरम ताके सम नाहन इह विधि वेद बतावै। —राग सोरठ महला 9 शब्द 5

52. वेद पुरान स्मृति के मत सुन निमष न हिये वसावै। पर धन पर दारा सिउ रचियो वृथा जनम सिरावै।

—राग सोरठ हला 9 शब्द 7

53. वेद कतेव कहहु मत झूठे झूठा जो न विचारे।

—राग प्रभावती कबीर जी शब्द 3

दसम गुरुग्रन्थ साहिब जी में लिखा है :—

भुजंग प्रयात छन्द—जिनै वेद पढ़यो सुवेदी कहाए। निने धरम के करम नीके चलाए।पठे कागदं भद्र राजा सुधारं। आपो आप मे वैर भावं विसारं। 1। नृपं मुकलियं दूत सो कासी आयं। सभै वेदयिं भेद भाखे सुनायं। सभे वेद पाठी चले मद्र देसे। प्रणामं कियो आन कै कै नरेसे। 2। धुनं वेद की भूप ताते कराई। सभी पास बैठे सभा बीच भाई। पढ़ साम वेदं जुजुर वेद कत्थं। ऋगं वेद पाठयं करे भाव हत्थं। 3।

रसावल छन्द—अथरव वेद पठयं। सुनियों पाप नठियं। रहा रीझ राज। दीआ सरब साजा। 4। —विचित्र नाटक अध्याय 4

आगे वह शब्द लिखता हूं। जिनमे वेद का खण्डन है। ताकि पाठक समझ सके उनका ठीक ठीक भाव क्या है। मेरी सम्मति इस प्रकार है जैसे ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास तीन में लिखा है :—

यस्तन्नवेद किमृचा करष्यिति। —ऋग्वेद 1। 164। 39

उस ब्रह्म को जो नहीं जानता, वह ऋग्वेदादि से क्याकुछ सुख को प्राप्त हो सकता है? जैसे यह पाठ है वैसे ही वह पाठ है। अर्थात् वेद का नाम लेकर वेदानुकूल आचारवान् न होने पर उसकी तथा साथही वेद की निन्दा है।

1. पढ पढ पोथी स्मृति पाठा। वेद पुरान पढ़े पड थाटा। बिन रस राते मन बहु नाटा। —राग गौड़ी अष्टपदियां महला 1 अष्टपदि 11

2. पंडित पढहि वखाणे वेद अन्तर वस्तु न जाने भेद।

—राग असा महला 1 शब्द 21

3. नाभि कमल तैं ब्रह्मा उपजे वेद पढहि मुख कंठ सवार। ताको अन्त न जाई लखणा आवत जावत रहे गवार।

—राज गुजरी महला 1 शब्द 2

4. सासत्र वेद वकै खड़ो भाई करम करहु संसारी। पाखंड मैल न चुकई भाई अन्तर मैल विकारी। इन विधि डूबी माकुरी भाई ऊडी सिरके भारी। —सोरठ महला 1 अष्टपतियां 2

वेद कतेवी भेद न जाना। —राग मारू सोलहे महला 1 शब्द 2, 6

6. वाचहि पुस्तक वेद पुराना। इक वहि सुनहि सुनावहि काना।

अजगर कपट कहु क्यों खुले विन सतगुरु तत न पाइया।

—मारू सोलहे महला 1 शब्द 22

7. ब्रह्मे गर्व किया नहीं जानिया, वेद की विपति पड़ी पछतानिया।

—राग गौड़ी महला 1 शब्द 9

8. केते कहहि बखाण कहि कहि जावणा।
वेद कहहि बखिआण अन्त न पावणा।
पडिऐ नांही भेद बुझिऐ पावणा।

—राग माझ की वार महला 1 बार 21

9. पंडित मैल न चूकई जे वेद पढ़हि जुग चारि।
त्रैगुणमाइआ मूल है विच हउमैं नाम विसार।
पंडित भूले दूजै लागै माइआ के वापार।

—राग सोरठ वार महला 3 वार 13

10. लोभी अन कउ सेवदे पड़ वेदां करहि पुकार।
विखिआ अन्दर पचमुए न उरवार न पार।

—श्रीराग महला 3 ख्शब्द 43

11. पढ़ पढ़ पंडित वेद बखाणहि माइआ मोह सुआइ।

—श्री राग वार महला 3 वार 9

12. वेद पढ़हि हरि रस नहीं आइआ। वाद बखाणहि मोहे माइआ।

—माझ अष्टपदिया म. 3 अ. 31

13. ब्रह्म मूल वेद अभिआसा। तिसते उपजे देव मोहि पिआसा।
त्रैगुण भरमे नाही निज घर वासा। —राग गौड़ी म. 3 श. 4

14. ब्रह्म वेद पढ़ वाद बखाणै। अन्तरि तामस आप न पछाणै।

—राग गउडी महला 3 अष्टपदियां अष्ट. 5 (1)

15. वेद पढ़हि हरि नाम न बूझहि।
माइआ कारण पढ़पढ़ लुझहि।
अन्तर मैल अगिआनी अन्धा क्योंकर दुतर तरीजे हे।
वेद वाद सभ आख वखाणहि। न अन्तर भीजे न शब्द पछाणहि।

—मारू सोलहे महला 3 शब्द 6

16. सासत स्मृत वेद चारि मुखागर विचरे। तपे तपीसर जोगीआ तीरथ गवन करे। षट करमा तें दुगुणे पूजा करता नाइ। रंग न लगी पार ब्रह्म तां सत्पर नरके जाइ। —स्त्री राग अष्टपदिया महला 5 अष्ट. 26

17. वेद पढ़े मुखि मीठी वाणी। जीआं कुहत न संगे।

—गौड़ी महला 4 शब्द 107

18. चतर वेद मुख वचनी उचरै आगे महल न पाइऐ। नाहीं एक सुधाखर ओह सगली झाख झखाइऐ। —राग गौड़ी महला 5 शब्द 164

19. वेद पढ़े पढ ब्रह्मे हारे इस तिल नहीं कीमत फई। साधिक सिध फिरे विललाते ते भी मोह माई। 2। दस अउतार राजे होइ वरते महादेव अउधूता। तिन भी अन्त न पाइओ तेरा लाइ थके विभूता।

—राग सूही महला 5 शब्द 49

20. वेद कतेव सिम्रिति सभ सासत्र इन पढियां मुक्ति न होई। एक अखर जो गुरमुखि जापे तिसकी निर्मल सोई। —सूही महला 5 शब्द 57

21. मुख तां पढ़ता टीका सहित। हिरदे नाम नाही पूरन रहिता।

—रामकली महला 5 शब्द 17

22. वेद पुकारे मुख ते पंडित कामा मन का माता। मोन होइ बैठा इकाती हिरदे कलपन गाठा। —राग मारू महला 5 शब्द 15

23. वेद पुराण सभे मति सुनके करी करम की आसा। रे सरिओ न एके काजा। भजिआ न रघुपति राजा। —सोरठ कबीर जी शब्द 3

24. सनपक सनन्दन अन्त न पाइआ। वेद पढ़े पढ़ ब्रह्मे जन्म गवाइआ। —राग आसा कबीर जी शब्द 10

25. वेद कतेव इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई। टुक दम करारी जउ करहु हाज़िर हजूर खुदाइ। —राग तिलंग कबीर जी शब्द 1

26. कबीर माइ मूंडउ तिह गुरु की जाते भरम न जाइ। आप डुबे चहु वेद महि चेले दीए बहाइ। —कबीर जी श्लोक 104

27. हमरे राम नाम कहि अबरे वेद भरोसे पांडे डूब मरहि।

—रामकली कबीर जी शब्द 5

28. वेद पुराण सिम्रिति सब खेजे कहूं न उबरना। कहु कबीर इउ रामहि पंजउ मेट जनम मरना। —राग आसा कबीर जी शब्द 5

29. क्या पढ़ीऐ क्या सुनिए। क्या वेद पुरानां सुनीऐ। पढ़े सुने क्या होई। जउ सहज न मिलिया सोई।

—राग सोरठ बीर जी शब्द 7

आगे कुछ शब्द दसम ग्रंथ जी के भी लिखता हूं :—

30. देव भेव न जानही जिहि मरम वेद कतेव। 183
31. पार न नाइ सके पदमापति वेद कतेव न भेद उचारा। 244
32. वेद पुरान कतेव कुरानहि सेव थके कर हाथ न आए। 245
33. वेद कतेव न भेद लखिओ सभ हार परे हरि हाथ न आइओ। 250
34. वेद पुरान कतेव कुरान अभेद न पान सभे पचहरे। 251

—अकाल उस्तुति

35. जिकी लिव हरि चरनन लागी। ते वेदन ते भए तिआगी।

—विचित्र नाटक 6 19

36. वेद भेद नहीं लखे ब्रह्म ब्रह्मा नहीं बुझे। ज्ञान प्रबोध। 32
37. वेद पुरान कुरान सभे गुन गाइ थके पर जाय न चीनो। 9
38. वेद कतेव के भेद सभे तज केवल काल कृपानिधि मानियो। 24 —सवैय्यै

इन सबका भाव प्रायः यही है, जो वेद पढ़ता है और आचारवान् नहीं बनता, वह अच्छा नहीं है। वेद उसे कुछ नहीं करता। कुछ का भाव यह भी है, जो परमात्मा परायण हो गए, उन्होंने वेद छोड़ दिया। यह दोनों बातें ठीक ही हैं।

वेद के साथ प्रायः कतेव का नाम भी आता है। कतेव के अर्थ कुरान हैं उस समय ईसाइयों का प्रचार न था।इस कारण बायबल का उल्लेख नहीं है।

सम्प्रदायों के जो धर्म ग्रनि हैं उनको पढ़कर यदि आचारवान न बने उस समय भी यही बात कहीं जाएगी, जो वेद के नाम पर कही गई है इसलिए इन शब्दों में वेद प्रमाणता का विषेध नहीं है और प्रथम शब्दों में वेद को प्रमाण माना गया है। यह निर्णीत ही है।

आगे पंडित तारा सिंह जी जिन्होंने श्री गुरु ग्रंथ साहिब का शब्द कोष लिखा है उनका लेख जो वेद शब्द पर है, लिखता हूं। भाषा भी उनकी ही होगी।

वेद—सं. धर्म और ब्र0च रूप अर्थ को विन्दति अनेन लभते हैं पुरुष जिस कर वा धर्म ब्रह्म को वेति अनेन जाणे हैं पुरुष जिस कर तिस वाणी का नाम वेद है वा धर्म ब्रह्म रूप अर्थ विद्वानों को है विचारणीय रूप कर

विद्यते यत्र जागीते हैं जिस वाणी के बीच तिस का नाम वेद है।

सो वाणी चार स्वरूप है, नाम चारों के 1 ऋग, 2 यजुर, 3 साम, 4 अथर्वण हैं। इन वेद वृछों का मूल ईश्वर है। कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों कांड भाव इनके मोटे टाले (टहने) हैं। यह चारों वेद मन्त्र, ब्राह्मण भेद से दो रूप हैं। दोंनों में मूल वेद का नाम मंत्र हे, व्याख्यान रूप वेद का नाम ब्राह्मण है। ो ब्राह्मण भी चार हैं। जिनमें ऋग्वेद स्वरूप मन्त्र का एतेरेय ब्राह्मण है। यजुर स्वरूप वेद का शतपथ ब्राह्मण है। साम स्वरूप मन्त्र के सामविधनादि अष्ट ब्राह्मण हैं। जिनके नाम पचविंश, षड्विंश, नाम विधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद् हैं। संहितोपनिषद् वंश ये हैं।अथर्वण स्वरूप मंत्र का गोपथ ब्राह्मण है। इन ब्राह्मण भागों में ही बहुधा ब्रह्मप्रतिपादक उपनिषद् हैं। सूत्र हैं।

वेद स्वतः प्रमाण है, ऐसे सांख्य शास्त्र के कर्ता कपल मुनि ने स्वीकार किया है। भाव यह समय वेद यथार्थ प्रतिपादन करने के स्वभाव से स्वतः प्रमाण हैं इस रीति की ही वेद को प्रमाणता ऋषि जैमिनी जी माने हैं। यांते वेदों की प्रमाणता मे और काहूं की चाल नहीं। स्मृति आदि की प्रमाणता में वेदों की चाह है। इसलिये वेद स्वतः प्रमाण हैं। उपवेदादि दूसरे ग्रंथ परतः प्रमाण हैं, अर्थात् वेद मे कहे अर्थ को कहने में प्रमाण हैं, वेद के विरुद्ध कहने में प्रमाण नहीं, सभी अप्रमाण हैं। इसलिये उपवेदादि सब ग्रनि प्ररतः प्रमाण हैं वेद जीव पुरुष कर रचित न होने से अपौर्षेय हैं यह व्यासादि मुनीश्वरों का विद्धांत है, सेई 'हरि आज्ञा होए वेद पाप पुन्न वीचारिआ' कह के गुरु का सिद्धांत है।

वेद रचके ईश्वर ने सबसे पहले किसके हृदय में प्रकाशित कीये। इस विषय में शतपथ में अग्नि, वाय, आदित्य से ऋग्, यजुर, साम वेद प्रकट हुए। जिनमें अग्नि से ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद हुया। यह श्रुति का अर्थ है।इस श्रुति के अनुसार आधुनिक लोग एसा कहते हैं—परमात्मा ने अग्नि ादि द्वारा ब्रह्मा जी को वेद की प्राप्ति करी। प्राचीन ग्रन्थों के अनुकूल निर्णय करेन वाले कहते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा है। सो परमातमा सब सृष्टि से पहले ब्रह्मा जी के लिये और सबको छोड़ वेदों का उपदेश करता भयां पुनः जैसे इस श्रुति में ब्रह्मा जी के प्रथम होने में 'पूव्र' पद है, तैसे मुण्डकोउपनिषद् में प्रथम लिखा है। ब्रह्मा सर्व देवताओं

से प्रथम उत्पन्न हुए, सो विश्व की रचना ओर पालना के द्वार हैं। अब निश्चय करो, जब ब्रह्मा सर्व देवताओं के आदि में उपजे और विश्व रचना के द्वार है।, तब अग्नि आदिकों की उत्पत्ति ब्रह्म जी के पश्चात् स्वयं सिद्ध होवे हैं। यांते पूर्ण ज्ञानी ब्रह्मा जी से ही अग्नि आदिकों ने पढ़ा, यही मानना सार है। वेद परमात्मा ने ब्रह्मा के हृदय में प्रकाशित किये, यह सिद्धांत है, सोई गुरु जी लिखे हैं।

'चारे वेद ब्रह्मा कउ दीए पड़ पड़ करे विचारी।

आपस्तम्ब ओर कात्यायन मुनि मंत्र, ब्राह्मण दोनों भाग को वेद माने हैं। उनके अनुसार बहुत लोग वह प्रक्रिया स्वीकार करें हैं। कोई आधुनिक मंत्र भाग मात्र वेद हैं। इतिहास पुराण रूप होने से ब्राह्मण भाग वेद नहीं, ऐसे कहे हैं। सोई दिखावे हैं।

1. ब्राह्मण वेद नहीं, वेद संज्ञा से विरुद्ध इतिहास, पुराण नामों वाला होने ते, महाभारत, पद्मपुराण आदिवत् जैसे महाभारत,पद्मपुराण आदि इतिहास, पुराण नामें वाले होने ते वेद नहीं, तेसे ब्राह्मण भाग भी वेद नहीं।

2. पुनः ब्रह्मण भाग वेद नहीं बने, मंत्र का व्याख्यान रूप होने ते, ओर व्याख्यानों वत्। जैसे आरों के व्याख्यान व्याख्यान रूप होने ते मूल रूप नहीं बने, तैसे ब्राह्मण भाग रूप व्याख्यान भी वेद नही बने।

3. पुनः ब्राह्मण भाग वेद नहीं। ऋषियां का कहा होने से। मनुस्मृति आदि ग्रन्थों वत्, जैसे मनुस्मृति आदि ग्रंथ ऋषियों के कहे होने से वेद नहीं तैसे ब्राह्मण भाग भी ऋषियों का कहिआ होने से वेद नहीं।

4. पुनः ब्राह्मण भाग वेद नहीं, कात्यायन, आपस्तम्ब ते बिना और मुनीश्वरों ने वेद संज्ञा न मानने से।

5. पुनः ब्राह्मण भाग वेद होने ही योग्य नहीं, मनुष्यों की बुद्धि का रचिआ होने से। जैसे मनुष्यों की बुद्धि के रचे होने से रघुवंशादि ग्रन्थ वेद नहीं, तैसे ब्राह्मण भाग भी वेद नहीं सिद्ध होवे।

आपस्तम्ब आदि मुनियों के कहे अनुसार ब्राह्मण भाग को वेद मानने वाले कहते हैं। इतिहास पुराण संज्ञा वेद संज्ञा की विरोधी नहीं। जेकर विरोधी हो, तब वेद संज्ञाा न बने जैसे मनुष्य, पशु आदि संज्ञा विरोधी है। सो एक अर्थ विषय नहीं बने हैं। ऐसे इतिहास, पुराण संज्ञा का वेद संज्ञा ते विरोध नहीं, याते जैसे एक घटविखे घट, कलस, द्रव्य पृथिवी आदि नाना

संज्ञा वरते हैं, तजैसे एक वेद विखे भी इतिहास, पुराण संज्ञा का विरोध न होने से ब्राह्मण भाग में दोनों संज्ञा सम्भव है। यांते ब्राह्मण भाग भी मन्त्रभाग वत् वेद है।

उत्तर– ब्राह्मण भाग की पुराण, इतिहास संज्ञा उसके वेद मानने वाले भी कहे हैं और पुराण नाम का पुरातन अर्थ राज वंशादि नवीन अर्थों के वर्णन से पुराणों से वेद वत संभव नहीं किन्तु पुरा नवं भवति इति पुराणं। बनने समय नये होकर जो पीछे पुराने हो गए होवें, सो कहिए पुराण, पुराण पद का ऐसा अर्थ संभवे है, सो वेद विखे संभव नहीं। क्योंकि वेद कभी नवीन नहीं बना, सदा अनादि अपौर्षेय है। पुराणवत् इतिहास नाम भी नवीन अर्थ को ही कहे हैं। काहेते इति, इस प्रकार ह=प्रसिद्ध, आस=हुआ। जैसे कठ उपनिषद् में लिखा है, 'तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस', अर्थ यह तिस उदालक ऋषि का ह= प्रसिद्ध नचिकेता नाम पुत्र आस=हुआ एसे वर्तमान काल से कुछ काल पूर्व होने वाले अर्थों को इतिहास पद कहे हैं। वैसे ही जनक, याज्ञवल्क्यक आकिकों की गाथाा में नवीन अर्थों का वर्ण है। जिसको काहूं ऋषि ने विदेह देश के राजा जनकादि के होने से पीछे रचा है। इसी प्राकर इतिहासों में जिनकी कथा है। वह सब कथा कथा वालों से पीछे बनी है। यथा राम रावण आदिको की। यां ते परम पुरातन अनादि अर्थ को कहने वाले मंत्र भाग की वेद संज्ञा के साथ नवीन अर्थ कहने वाली इतिहास पुराण संज्ञा अविरुद्ध मानना सभ्यक् नही। रहो अधिक विचार।

एवे पाणनी, पातंजली आदि ऋषियों के रचे सूत्र भाष्यादि व्याख्येय व्याख्यान ग्रन्थों में एक व्याकरण संज्ञा वेखके मंत्र ब्राह्मण भागों में एक संज्ञा माने, पुनः मंत्र, ब्राह्मण रूप व्याख्याये, व्याख्यान को एक की बनाई मूल टीकावत् एक ईश्वर कृत माने, तो भी अयोग्य है, काहेते, जेकर ब्राह्मण भाग भी ईश्वर बनाता, तब उपवेद, अंग, उपांग आदिकों के बनाने में ऋषियों को श्रम क्यों देता दिया है, तो ब्राह्मण भाग रूप व्याख्यान भी औरों के बनाये हैं, ईश्वर के नहीं। और गौण इतिहास पुराणों से मुख्य हैं, यांते आपस्तम्ब आदि महात्मायों ने गौण मात्र से इनको वेद कहिआ है। अर व्यास ऋषि ने अपने सूत्रों में इन ब्राह्मण भागोवत् उपनिषद रूप उत्तरकांड का विचार यिका है। इसलिये ब्राह्मण भाग मंत्र से उत्तर प्रमाण है, और ग्रंथों से पूर्व प्रमाण है इस सारे पाठ का भाव वही है, जो प्रथम आर्य समाज का वेद

विषयक सिद्धान्त लिखा है। भेद इतना ही है—पंडित तारा सिंह जी वेदों का प्रकाश ब्रह्मा के हृदय में मनते हैं और ऋषि दयानन्द अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के हृदय में प्रकाश मानते हैं।

अन्त में दो शब्द और लिखता हूं यथा—

1. अवरि सभ भूति भ्रमत न जानिआ। एक सुधाखर जाके हिरदै वरिआ तिन वेदहि तत पछानिआ। —राग सारंग महला 5 शब्द 11

2. सासत्र वेद की विधि नहीं जाणहि विआपै मनके मान।

—सारंग महला 5 शब्द 2

चिंतनीय पाठ

1. साम कहै सेतंवर सुआमी सचि महि आछे साच रहे। समको सच समावै। ऋग कहे रहिआ भरपूरं राम नाम देवा महि सूर। जुज महि जोरि छली चन्द्रावलि कान कृष्ण जादम भइआ। पार जातु गोपी लै आइआ व्रिद्रावन महि रंग कीआ। कलि महि वेद अथर्वण हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ। नील वसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ। चारे वेद होए सचिआर। पडहि गुणहि तिनु चार वीचार। भाउ भगत कर नीच सदाए। तउ नानक मोखतर पाए। —राग आसावार महला 1 वार 13

भाई गुरदास जली गुरुवाणी क ज्ञाता माने जाते हैं, उनका लेख है—

2. ऋग्वेद महि ब्रह्म कृत पूर्व मुख सुभ करम विचारा। खत्री थापे जुजरवेद दखण मुखवहु दान दातारा। वैशो थपिआ सयाम वेद पछम मुख कर सीस निवारा। ऋग नीलंबर जुजर पीत स्वेतंबर कर सयाम सुधारा। त्रिहु जुगी त्रै धरम उचारा। 6।

3. कलिजुग चौथा थापिआ सूद्र विरत जग महि वरताई।
करम सु ऋग जुजर सयाम के करे जगत रिक वहु सुकचाई।7।

4. चहु वेदां के धरम मथ षट शासत्र मथ ऋषि सुनावै। ....
जयों कर कथिआ चार वेद षट सासत्र संग सांख सुनावै।8।

5. गोतम पते विचार कै ऋग् वेद दीकथा सुणाई।
नियाइ शास्त्र को मथ कर सभ विध करते हथ जणाई।...
ऋग कह सुण गुरुमुखां आपे पाप न दूजी राई। 9।

6. जैमन रिख बोलिआ जुजर वेद मथ कथा सुणावै।

करमा उते निवडे देही मध्य करे सो पावै।
जुजर वेद को मथन कर तते ब्रह्म विचे चुरम मिलावै।10।

7 स्याम वेद कउ सोध कर मथ वेदान्त विआस सुणाया।
कथनी बदनी बाहिरा आपे ापने ब्रह्म जणाया।
आप पुजाई जगत विच भउ भगत दा मरम न पाया।
त्रिपति न आवै वेद मथि अगनी अन्दर तपत तपाया।11।

8. द्वापर जुग वतीत भए कलिजुग के सिर छत्र फिराई।
वेद अथरवर्ण थापिआ उत्तम मुख गुरमुख गुन गाई।
कपल रिषीश्वर सांख मथ अथरवर्ण वेद की रिचा सुनाई।12।

9. वेद अथरवर्ण मथनि कर गुरुमुख वासेषक गुण गावै।
जेहा बीजे सो लुणी समे बिना फल हथ न आवै।...
जैसा कर तैसा लहै ऋशि कणादिक भाष सुनावै।13।

10. शेष नाग पातंजल मथिआ गुरुमुख शासत्र नाग सुणाई।
वेद अथरवर्ण बोलिआ जोग बिना नहि भरम चुकाई।..
तिहु जुगा की वासना कलिजुग विच पातंजल पाई।
हथो हथी पाइऐ भगत जोग की पूर कमाई।14।

11. कलिजुग के उपकार सुण जैसे वेद अथरवण गाई।
भाउ भगत परवाण है जग्ग होम ते पूरब कमाई।
करके नीच सदा वणा तां प्रभ लेखै अन्दर पाई।16।

—भाई गुरदास की वारां वार 1

यह सिद्धान्त चिन्तनीय हे, गुरु जी के आधार पर भाई गुरदास जी ने लिखा कुछ विशेष बातें भी लिखीं। किन्तु यह सिद्धान्त किसके आधार पर है, मुझे इसका कुछ पता नहीं। यथा कोइ इस पर कुछ प्रकाश डालने का कष्टा करे, तो उत्तम बात हो।

— + —

10.

कर्म

''कर्म''–जो मन, इन्द्रिय और शरी से जीव चेष्टा विशेष करता है। वह कर्म कहाता हे कर्म शुभ, अशुभ और मिश्रित भेद से तीन प्राकर का है।

क्रियमाण–जो वर्तमान में यिका जाता है, सो क्रियमाण कर्म कहाता है।

संचित–जो क्रियमाण कर्म का संस्कार आत्मा में जमा होता हे, उसको संचित कर्म कहते हैं।

प्रारब्ध–जो पूर्व किये हुए कर्म के सुख, दुखरूप फल का भोग किया जाता है, उसको कर्म कहते हैं।

पुरुषार्थ–अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये मन, शरीर, वाणी और धन से, जो अत्यन्त उद्योग करना है, उसको पुरुषार्थ कहते हैं।

पुरुषार्थ के भेद–जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी, प्राप्त का अच्छे प्रकार रक्षण करना, रक्षित को बढ़ना ओरबड़े हुए पदार्थों का सत्य विद्या ी उन्नति मेंतथा बसके हित करने में खर्च करनरा है, इन चार प्रकार के कर्मों को पुरुषार्थ कहते हैं। –आर्योंद्देश्य रत्नमाला

''जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी नहीं पावेगा। जैसे –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। यजु.। अ. 40। 02

परमेश्वर आज्ञा देता है, कि मनुष्य सो वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छ करें, आलसी मभी न हों देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी है, वे सब अपेन अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथ्वी आदि सदा घूमते, ओरृक्ष आदि सदा बढ़ते घटते रहते हैं, वैस यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष कासहाय दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे

काम करने वाले पुरुष को भृत्य करते हैं और अन्य आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने ओर नेत्र वाले को दिखलाते हैं, अन्य को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना मे सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। –सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 7

प्रश्न–ईश्वर ने किन्हीं जीवो को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि क्रूरजन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु जन्म, किन्हीं को वृक्षदि, कृमि कीट पतंगादि जन्म दिये हैं। इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

उत्तर–पक्षपात नहीं आता, क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किय हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से जो कर्म के बिना जन्म देता, तो पक्षपात आता। –सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 8

प्रश्न– जब जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देता है, तो जीव का सुधार नहीं हो सकता, क्योंकि जब उसका ज्ञान होकि हमने अमुक काम किया था, उसी का यह फल है, तभी वह पाप कर्मों से बच सके।

उत्तर– तुम ज्ञान कै प्रकार को मानते हो।

प्रश्न– प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का।

उत्तर–तो जब तुम जन्म से लेकर समय समय में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्रय, निर्बुद्धि, मखतादि, सुख दुःख संसार में देखकर पूर्व जन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते? जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो, उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता है और अविद्वान् नहीं जान सकता, उसने वैद्यक विद्या पढ़ी है और दूसरे ने नहीं, परन्तु ज्वरादि ोग के होने से अवैद्य ीाी इतना जान सकता है कि मुझ से कोई कुपथ्य हो गया है, जिससे मुझे यह रोग हुआ है। वैसे ही जगत् में विचित्र सुख दुःख आदि की घटती बएती देख के पूर्व जन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते? और जो पूर्व जन्म को न मानोगे, तो परेश्वर पक्षपाती हो जाता है। क्योंकि बिना पाप के दारिद्र्ययादि दुःख ओर बिना पूर्व संचिज पुण्य के राज, धनाढ्यता ओर बुद्धि उसको क्यों दी और पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार दुःख सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

प्रश्न–एक जनम होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय, जेसे माली अपने उपवन में छोटे ओ

बड़े वृक्ष लगाता, किसी को काटता, उखाड़ता और किसी की रक्षा करता बढ़ाता है। जिसकी जो वस्तु है , उसको वह चाहे जैसे रखे; उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करने वाला नहीं, जो उसको दण्ड दे से या ईश्वर किसी से डरे।

उत्तर—परमात्मा जिस लिए न्याय चाहता करता है, अन्याय कभी नहीं करता, इसलिये वह पूजनीय और बड़ा है। जो न्याय विरुद्ध करे, वह ईश्वर ही नहीं, जैसे माली युक्ति से बिना मार्ग वा अस्थान में वृक्ष लगाने,न काटने योग्य को काटने, अयोग्य को बढ़ाने, योगय को न बढ़ाने से दूशित होता है इसी प्रकार बिना कारण के करने से ईश्वर को दोश लगे, परमेश्वर के ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है, क्योंकि वह स्वभव से पवित्र ओर न्ययकारी है, जो उन्मत्त के समान काम करे, तो जगत् के श्रेष्ठ न्यायाधीश से भी न्यून ओर अप्रतिष्ठित होवे। क्या इस जगत् मे बिना योग्यता के उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुश्ट काम किये बिना दण्ड देने वाला निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता? इसलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता, इसी से किसी से नहीं डरता।

प्रश्न—परमातमा ने प्रथम ही से जिसके लिए जितना देना विचारा है, उतना देता, ओर जितना काम करना हे, उतना करता है?

उत्तर—उसका विचार जीवों के कर्मानुसार होात है, अन्यथा नहीं, जो अन्यथा हो, जो वही अपराधी, अन्यायकारी होवे।

—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 9

इसका भाव संक्षेप से यह है, जीव कर्म करता है। ईश्वर प्रत्येक जीव को उसके कर्मों के अनुसार ही फल देता है। बिना किये अपनी इच्छा मात्र से ईश्वर किसी जीव को कोई फल नहीं देता है। इसी के अनुसार र्म क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध रूप में विभक्त है।

आगे सिख गुरुओं के शब्द लिखता हूं, जिनका भाव ऐसा ही है :—

1. आपे बीजि आपे ही खाहि। —जपुजी 20
2. चंगि आइआं बुरिआइआं वाचे धरम हदूरि।
   करनी आपो आपणी कै नेडै कै दूरि। —जपुजी सलोक 39
3. ददे दोसु न दऊ किसे दोसु करंमा आपणिआं।
   जो में कीआ सोमैं पाइआ दोसु न दीजे अवर जना।

—राग आसा महला 1 पटी लिखी शब्द 21

4. फल तेवे हो पाइऐ जवे ही कार कमाइऐ।
   —आसा की वार महला 1 वार 10
5. जैसा करे सु तैसा पावे आप बीज आपे ही खावे।
   —राग धनासरी महला 1 शब्द 6
6. जेहे करम कमाइ तेहा होइसी। —राग सुही महला 1 शब्द 6
7. करमा उपर निवडै जे लोचै सभ कोइ।
   —राग गौड़ी महला 1 शब्द 18
8. मंदा चंगा आपनणा आपे ही कीता पाबणा।
   —राग आसा वार महला 1 वार 14
9. जो धरम कामावै तिस धरमे नाउ होवै पाप कमाणे पापी जाणीऐ।
   —राग माझ वार महला 1।महला 2 वार 2
10. आगे जाति रूप न जाइ। तेहा होवे जेहे करम कमाह।
    —आसा महला 3 शब्द 47
11. जो बीजे सोई फल पाए सुपन सुखा न पावणिया।
    —राग माझ महला 3 अष्टपदियां अष्ट. 8
12. विण करमा किछु पाइऐ नाहीं किआ कर कहिआ जाइ।
    —राग आसाा महला 3 अष्टपदिआं अष्ट. 37
13. रे मन जैसा सेवहि तैसा होवहि जेहे करम कमाइ।
    आपि बीज आपेही खावणा कहण कछु न जाइ।
    —सूही महला 3। अष्टपदियां 3
14. करम धरती सरीर कलिजुग विचि जे को बीजे तेहा को खाइ।
    —राग गौडी वार महला 4। वार 15
15. हरि वेख सुणे नित सभ किछु तिदू किछ गुझा न होइआ। जैसा बीजे सो लुणै जैसा परव किने बोइआ।
    —गौड़ी वार महला 4 वार 16
16. कूडि कपट किने न पाइओ जो बीजे खावे सोइ।
    —श्री राग महला 4 शब्द 65
17. जैसा बीजै तैसा खावै। —राग आसा महला 4। शब्द 54
18. करम धरती सरीर जुग अन्तर जो बोवै सो खाहि।

—स्त्री राग महला 5 पहरे शब्द 4

19. जेहा बीजै सो लुणे मथेजो लिखि आसु।

—माझ वारह माह महला 5 शब्द 9

20. कतिक करम कमावणे दोस न काहू जोग।

—माझ वारह माह महला 5 शब्द 71

21. वहु जोनि भवहि धुरि किरति लिखि आसा। जैसा बीजहि तैसा खासा। —राग गौड़ी गुआरेरी महला 5 शब्द 71

22. किरत करम न मिटै नानक हरि नाम धन नहीं खटिआ।

—जैतसिरी महला 5 शब्द 27

23. दोसु न दीजै काहू लोग। जो कमावन सोई भोग। आपन करम आपे ही बंध। आवन जावन माइआ धन्ध।

—रामकली महला 5 शब्द 19

24. जेहा बीजे सो लुणै करमां संदड़ा खेत।

—राग माझ बारह माहां महला 5 शब्द 7

25. भूलिओ मन माइआ उरझाइओ। जो जो करम किओ लालच लगि तिह तिह आप बंधाइओ। —राग जैतसरी महला 9 शब्द 1

26. फरदा वेख कपाहै जि थिआ जि सिर थीा तिलाहि। कमादै अर कागदै कुंने कोइ लिआह। मन्दे अमल करेंदिआं एह सजाइ तिनाह।

—शेखफरीद सलोक 59

27. फरीदा मौते दा वंना एवें दिसे जिउं दरिआवै ढाह। आगे दोजक तपिआं सुणीऐ हूल पवे कहाह। इकना नो सभ सोझी आई इक फिरदे वे परवाह। अमल ज़ि कीतिआं दुनी विचिसे दरगह ओगाह।

—फरीद सलोक 98

28. जिउ कपि के वर मुसटि चनन की लुवधि न तिआग दइओ। जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिर रहि परिओ।

—गौड़ी कबीर शब्द 59

29. नाराइण निंदसि काइ भूली गवारी। दुकृत सुकृत थारे करमुरी। ....पूर्वले कृत करम न मिटेरी....त्रिलोचन। —राग धनासरी शब्द 1

30 जीय जन्त जहा जहा लग करम के वस जाइ।

—राग आसा रविदास शब्द 1

इसी भाव के और भी अनेक शब्द हैं, किन्तु मैं यही पर्याप्त समझता हूं। जीव को सुख—दुख्ख कर्म के अनुसार प्राप्त होता है। वह कम्र दृष्ट, अदृष्ट दो प्रकार के हैं। क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।। योग अर्थात् क्लेश का मूल कर्माशय ही है वह दृष्ट जन्म वेदनीय अर्थात् जो इसी जन्म वा इसी शरीर के किये जाते हैं और अदृष्ट वदेनीय, जो पिछले जन्मों में किए थे। यह दोनों ही समय—समय पर फल देने वाले होते हैं। कर्म स्वयं अस्थायी हैं, जड़ हैं, वह अपने संस्कार आत्मा में छोड़ जाते हैं। उन संस्कारों के अनुसार परमात्मा जीव को उसके किए हुये कर्मों का फल देता है। यह सिद्धांत है।

— + —

11.

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत के नाम=जनेऊ, जंञूं, व्रतबंध, सौत्रामणि, प्रतिज्ञा तंतु, उपनयन आदि अनेक है।। इसके बनाने की विधि स्मृतियों में लिखी हैं यह तीन लड़ी का होता है। पुनः एक लड़ी भी तीन–तीन लड़ी मिला कर बनाई जाती है। अर्थात् सब मिलकर नव तंतु हो जाते हैं। उपवीत तीन लड़ी के ऊपर गांठ देकर बनाया जाता है। इस विषय में शिक्षा दी जाती है–

मनुष्य पर तीन ऋण होते हैं, 1. ऋषि ऋण–जो विद्या पढ़ने से पूरा जोात है। 2. पितृ ऋण जो विवाह करके संतानोत्पन्न होने से पूरा होता है। 3. देव ऋण जो धर्म कार्य करने से पूरा होात है–जैसा पूर्व लिखा है। एक धागे में पुनः तीन धागे होते हैं, उनसे यह शिक्षा मिलती है। माता, पिता, आचार्य की धर्मयुक्त आज्ञा मानो, सेवा करो। ऋक्, यजु. साम वेद पढ़ो, कर्म, उपासना, ज्ञान प्राप्त करने वाले हो, मन, वाणी, शरीर से अच्छे कर्म कर्ता हो आदि।

जिस समय बालक पढ़ने योग्य होता है। उस समय यज्ञोपवीत संस्कार करवा के पढ़ने भेजा जाता है। ऋषि दयानन्द जी ने संस्कार विधि में लिखा हैः–

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वाद्वशे वैश्यम्।

अर्थात् आठवें वर्ष मे ब्राह्मण का उपवीत हो, अथवा गर्भ से आठवें में हो। ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का ओर बारहवें वर्ष में वैश्य का संस्कार हो।

सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में लिखा है–

(क) इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्र0चचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या....।

(ख) द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत ओर कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी अपनी पाठशाला में भेज दें।

इस प्रकार बालक तथा बालिका दोनों को उपनयन संस्कार होता है। यज्ञोपवीत धारण करने वाला माता, पिता, आचार्य की सेवा, वेद पढ़ने और मन, वाणी, शरीर से बुरा काम न करने का व्रत लेता है। यदि वह इसे पूरा करके तब तो संस्कार सफल है। यदि प्रतिज्ञाओं का पालन न करे, तो उसे विशेश लाभ नहीं होता है। यह सामान्य रूप से उपवीत संस्कार का भाव है।

अब विचार करते हैं–सिख गुरु महाराज इस विषय में क्या आज्ञा देते हैं। यह सामान्य रूप से उपवीत संस्कार का भाव है।

अब विचार करते हैं–सिख गुरु महाराज इस विषय में क्या आा देते हैं। उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया वा नहीं?

प्रथम गुरुवों के विषय में लिखते हुये श्री गुरुग्रन्थ साहिब का एक शब्द और हित नामों के पाठ लिखना आवश्यक है। अतः वह लिखता हूं :–

1. दझ कपाह संतोषु सूत जतु गंढो सत वटु एह जनेऊ जीअ का हई त पाण्डे धतु। ना एहतुटे ना मल लगै ना एहु जलै ना जाइ। धंन सुमाणस नानका जो गल चले पाइ। चउकड़ि मुलि अणाइआ वहि चउके पाइआ। सिखा कंन चड़ाइआ गुर वाह्मण थिआ। ओहु मुआ ओहु झड़ पइआ वे तगा गइआ।1। महला 1। लख चोरी आ लख जारी आ लख कूड़ी आ लख गाल। लख ठगीआ पह नामीआ रात दिनसु जीअ नाल। तग कपाहहु कतीऐ वाहमण वटे आइ। कुहिबकरा रिंन खाइआ सबको आखे पाइ। होइ पुराणा सुटीऐ भी फिर पाइऐ होर। नानक तग न तुटई जे तग होवे जोर। 2। म. 1। नाइ मंनीऐ पति ऊपजै सालीही सच सूत। दरगह अन्दर पाइऐ तग न तुटस पूत। 3। म. 1। तग न इन्द्री तग न नारी। भल के थुक पवै नित दाड़ी। तग न पैरी तग न हथी। तग न जिहवा तग न अंखी। वेतगा आपे वते। वटि धागे अवरां घते। लै भाड़ करे वीआहु। कढि कागलु दसे राहु। सुणु वेखहु लोका एह विहाण। मन अंध नाउ सुजाण। 4।

–आसा की वार महला 1 वार 15

2. गुरु जी का सिख जंञं टिके दी काण न करे अर्थात् जंञूं टिका धारण न करे। –सहित नामा भाई चोपासिंह जी

3. जनेऊ न पाइ, तिलक धागा काठ दी माला धारे सो तन खाही आ। –रहित नामा भाई दयासिंह जी

4. जो सिख गल महि धागा मेलै। चोपड़ बाजी गनका खेलै। जनम सुवान पावेगा कोटि, रहित नामा भाई प्रहलादसिंह जी।

यह चार पाठ हैं, जो यज्ञोपवीत के निषेध में प्रमाण रूप से कहे जाते हैं इनमें 3 तो रहितनामों के है।। उन पर विचार पीछे करेंगे। प्रथम श्री गुरुग्रंथ साहिब जी के श्री गुरुनानक देव जी के शब्द पर विचार करते हैं :—

कहा यह जाता है —यह शब्द श्री गुरु नानक देव जी ने उस समय पढ़ा था, जब उनका उपवीत संस्कार होने लगा था। इस शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर है और लिखने वाले भी प्रतिष्ठित सज्जन है।। इसलिये इस शब्द पर उनका विचार क्या है? यह जानना आवश्यक है। उसी से निश्चय करने में सहायता मिलेगी।

ई बाला जी गुरु नानक जी की सेवा में रहे। वह जहां गए, यह उनके साथ गऐ। गुरु जी के स्वर्ग सिधारने पर गुरु अंगद जी ने भाई बाता से पूछ कर नानक देव जी की जीवनी लिखी। उसका नाम जन्म साखी भाई वाले वाली है। उसमें यह घटना इस प्रकार लिखी है।

''जां गुरु नानक नौ वरसां दा होइआ, तां जनेऊ पावण दी रीत करन वासते कालू (गुरु जी के पिता का नाम है) ने पुरोहित हरदयाल को बुलाइआ। शुभ महूरत देख कर पुरोहित जी ने सभ सामिग्री मंगवाइ। जो जात भाई कालू के थे सभ को कहा अर ब्राह्मण जो वहां रहते थे, सभ को निउता (निमंत्रण) दिया। सभ भाई बन्द जाति के अर ब्राह्मण भी इकत्र होइके गरु बाबा जी को जनेऊ पावणे लगे। अस्थान को लेपन कर वेद विध चौकपूरन कीआ। वेदी वंश के सभ भाई और ब्राह्मण जो वेद विध के ज्ञाता थे, सर्वत्र इक्ट्ठे होइके बैठे। बाबा नानक जी को इसनान (स्नान) करवाइ के बुलाइआ। तां बाबा जी इसनान करके आ बैठे। एसे सोभा वाते हैं, जैसे सीा तारा मंडल में चंद्रमा सोभा पावता है। पुरोहित ने छत्रियों की रीत वेद विहित सभ करवाई। जो पुरातन रीत थी और कलाचार सभ सिखाने लगा। संध्या, तर्पण, सिखा, सूत, धोती, जनेऊ, माला, तिलक षट करम गुरुजी नूं सिखावने लगा। तो सव्र समरथ गुरु नानकजी मुक्त, भुक्त के देणे वाले पुरोहित नूं कहण लगे। हे! मिसर जी एस जनेऊ के पाए ते क्या अधिकता हुंदी है। इस जनेऊ पाणदा की धरम है, अते कौण पदवी मिलदी है, अर

इसदे न पहरने कर ककेहड़ी ऊनता हुंदी है। तां हरदयाल जी बोले। इस जनेऊ दे पहरने बिना अपवित्र हुन्दा है। चौके का अधिकार हुन्दा नहीं, अपवित्र रहिंदा है। जब वेद की विध पूरवक खत्री, ब्राह्मण इस जनेऊ को पहरते है।, तब सब करम धरम दे अधिकरी हुन्दे हैन तां फेर गुरुजी कहआ, सुणे पण्डित जी! खत्री, ब्राह्मण होइ कर जनेऊ गल पाइआ अर बुरे करम करन थीं न टलिआ, खोटे करम करदा ही रहिआ, तां ब्राह्मण, खत्री जनेऊ पाइके बाहरले धरम नूं क्या करेगा। धन दे वासते हिंसा, धरोह (द्रोह) अध् ारम, अन्त पर्यन्त दुष्टता, झूठ, चुगली कीती, तब ओह खत्री, ब्राह्मण नहीं चण्डाल हैं, अन्त नू जमराज दी सासना पावेगा; तिस नूं जनेऊ पाए दा क्या फल हाइआ। ईहां जे पाप करेगा, नरक भोगेगा। जद एह वारता गुरु जी ने कही, तां जितने लोक बैठे सन, सभ हैरान हो गए। मन में कहने लगे, हे परमेश्वर जी! अजता एह बालक रूप है अते कैसीआं वातां करदा है। तां जितने लोक बैठे सन, सीा हैरान हो गए। मन में कहने लगे, हे परमश्वेर जी! अजेतां एह बालक रूप है अते कैसीआं वातां करदा है। तां फेर पंडित आखिआ, हे नानक जी! ओह कौनसा जनेऊ है, जिस जनेऊ पाएते इस प्रणी दा धरम रहिंदा है, तां बाबा जी ने इक सलोक कहिआ—

दाइआ कपाह संतोष सूत जत गंढी सत वट।.......तां फेर पंडित जी ने कहिआ, महिता कालू तेरा पुत्र कोई देवता है, आने ही जनेऊ पावे। तां महिते कालू कआि, बच्चा महापुरुष भी जगत दी चाल करते आए है न। तां बाबे कहिआ, जिवें तुहाड़ी रजाइ। तां पंडित ने कहा, हे नानक जी एस जनेऊ नूं पवित्र करो, तो बाबे जी ने जनेऊ पाइआ।

—जन्म साखी पृष्ठ 20—23

भाई मनिसिह जी गुरु गोविंद सिंह जी के साथ रहे, उन्होंने ध्भी एक जन्म साखी लिखी है। आगे उसका पाठ लिखता हूं।

तां राइ बुलार कहिआ, नानक तूं वली है। अर सेवकां नूं आखिआं तुसीं कालू नूं बुला लिआवों जां ओह कालू नूं बुलावण गए, तां कालू ब्रिजनाथ परोहित दे घर बाबे दे जनेऊ दा महूरत पुछण गइआ होइआ सी, तां ओह ओथों ही बुलाई लिआए। तां राइ बुलार ने कालू नं पुछिआ, कि तूं ब्रिजनाथ दे क्यों गया सी? तां कालू कहिआ मैं पुत्र दे जनेऊ दे पावण वासते लगण गिणन गइआ आहा। अते सोसने आखिआ है, कि सवा सौ

मण लुचीआं अर खीर ब्राह्मणां वासते तयार करो र दस बकरे अर पंज सौ मण और पदारथ खत्रीआं वासते तयार करो अर इक मिरग (हरिण) भी शिकार का मारिआ होया होवे। सो होर समग्री तां मैं सभ तिआर कर आइआ हां। पर इक मिरग दी तचा हथ नहीं लगतीं ता राइ बुलार कहिआ, मैं भलके (कल को) शिकार चढूंगा, अर मिरग मार के लिआऊंगा। तां कालू कहिआ, भलके नौचन्दा एतवार है अर थित (तिथि) पंचमी है, ते मैं भलके नानक को जनेऊ पावांगा, तुसा मिरग जरूर लिआवणा। तां बावे कहिआ, कि पंज सै मण लुची, कचौरी, कडाह (मोहन भोग) साधं संतां वासते होर तयार करना। जो सार तलवंडी दे चौफेरे साथ उरे होए हन। तां कालू गुरु नानक जी नूं लैकर घर आइआ, अर जग (उत्सव) दी तयारी करन लगा। कानू सभ तयारी करके ब्रिजनाथ दे घर बावे नूं लैंगिआ। अर सभ ब्रह्मपुरी अर सभ संत साध इकट्ठे होए। तां काले आखिआ, हे पुरोहित! गुरु नानक जी नूं गयत्री मन्त्र भी देहो अते जनेऊ भी पाओ। तां पुरोहित लगा गुरु नानकदेव जी दे कन विच गायत्री मंत्र फूकण। तां बावे पंडित जी नू कहिआ, कि तू आप मन्त्र सिखिआ होइआ हैं? जो सानूं सिखावता है। तो ओस आखिआ, मैं पुराण, शास्त्र सभ पढ़िआ होइआ हां। तां बावे कहिआ, चहुं वेदा का मत क्या है? तां ओस कहिआ। जे तूं जाणदा हे, तां तूं कहु तां बावे सलोक कहिआ :—

नानक मेरु शरीर का इकु रथु इकु रथवाह। जुग जुग फेरि वटाई अहि गिआनी बुझहि ताहि। समजुग रथ संतोष का धमर अगगे रथ शह। त्रेते रथ जते का जोर अगे रथवाइ। द्वापुर रथु तपे का सत अगे रथ वाह। कलिजुग रथु अग्नि का कूड अगे रथ वाह। —आसा वार महला 1 वार 13

सिंमल रुख सराइरा अति दीरघ अति मुच। ओइ जि आवहि आसकर जाहि निरासे फितु। फल फिके फुल वकवके कंम न आवहि पतु। मिठ तनीवी नानका गुण चंगिआइआं ततु। सबको निवे आप कउ पर को निवे न कोइ। घर ताराजू तोलीऐ निवैस गउरा होइ। अपाधी दूण निवै जो हंता मिरगाहि। सीस निवाए क्या थीए जि रिदै कुसुधे जाइ।

—आसा वार महला 1 वार 14

दइआ कपाह संतोषु सूत जत गंढीसत वट....।

—आसा वार महला 1 वार 14

तां पुरोहित कहिआ, हे कालू एह तेरा पुत्र कोई देवता पैदा होइआ है। पर जिवें हनुमान नं रावण ब्रह्मफास पाइ सी, ते ओस आपे मन लई सी, सो एह भी जे ाअने मन लवेगा, तां जनेऊ पावेगा, तां कालू आखिआ, बच्चा महापुरुष भी जगत दी चाल करदे आए हन, तां बावे कहिआ, जिवें तुहाडी रजाई। तां बावे नूं जनेऊ पुआइके कालू घर लिआइआ।

—जन्म साखी भाई मनिसिंह जी पृष्ठ 90—97

आगे नानक प्रकाश का पाठ लिखता हूं :—

कालू बहुरो कीन विचारा। जग्योपवीत देन हित धारा।
पुरोहित जो तिह को हरदयाला। सो बुलाइ लीनो ततकाला।
उर अभिलाषा सफल सुनाई। छत्री रीत करो द्विजराई।
सुन कर वच अस द्विज हरदयालू। कह्या जो मौज सभ आन विसालू।
सुभ अवसर सो दीन बताई। कर आरंभ जिउ अधिह बड़ाई।
द्विजवर ते सुनकर तब कालू। सभ संभारन आन उतालू।
गोमै से लेपन छित करके। पूरयो चौक हव उर धर के।
सत्री नानक जी पुन बुलवाए। द्वित बाहुज के बीच वसाए।
छत्रिन रीत जुहूती पुरातन। सो कीनी द्विजवर सभ भातन।
कुल आचार सिखावन लगा। पुन पावन जंञूं पावो।
द्विज छत्री के धरम जुधरणी। जग्योपवीत सु ावन करणी।
वेदन विधि से जव गर पावहि। द्विज वाहुज निज धरमहि आवहि।
सुन पुरोधा के वचन कृपाला। कंवल वदन कहि गिरा रसाला।
द्विज वाहुज के धरम जो आही। गर में पाए सूत रहा ही।
किधें सुकरम करम करेते रहई। दया आदि जो सुभ निबहई।
पाइ सूत गर करत कुकरमा। धन हित हिंसा द्रोह अधरमा।
अंत पर्यन्त दुष्टता धारे। झूठ पिशुनता चित हित कारे।
सो छत्री द्विज किधों चण्डाला । लहहि जाइ जम दण्ड विसाला।
कौन जनेऊ तिहि फल दीना। पायो नरक इहां अघ कीना।
कौन जुञूं ते जाइन नरका। जाको जम नहीं करे कुतरका।
सो निज रसना देहु सुनाई। सुनन चाहि सभ उर हरसाइ।

—श्लोक महला 1।

दइला कप ह संतोषु सूत जत गढ़ी सत वट.... चले पाई।

—आसावार महला 1। 15

तो बालक इह जग्योपवीता। वेद पंथ महि गिणिआ पुनीता।
परमपरा पास धर धरमा। द्विज वाहुज को राखत धरमा।
ब्रह्मदिक ते इह चल आवा। सनक सनदंन सम पहरावा।

—महला 1।

चउकड मुल अणाइया.....वेतगा गइआ।
पुन तिह काल जो काल ग्याती। सो बोले निज बात सुहाती।
द्विज वाहुज सभ तुम घर आवा। पहरो जंञू जगत सुहावा।
जो निज कुल की चलहि न चाले। जात पात ते करें निराले।
नर संपूरन अर परवारु। रहषहि उर करहु गुर धारू।
नातर मभ को बध्यो हुलासा। मिट ज है मन होहि उदासा।
एक बार गर पाइ जनेऊ। पुन करीए उर इच्छा जेऊ।
अस सुन कर ग्यातन के वैना। पुन बोले स्त्री पंकज नैना।

—महला 1।

लख चोरीआं लख जारीआं....जे तग होवे जोर।

अस विध स्त्री नानक सति दानी। उपदेशन की उचरत वानी।
वचन वदत विप्रन वर आई। जग्योपवीत दीओ पहराई।
तूषन भए ते सुख सदना। द्विज दंभन को कीन निकदना।
जिह खिन हरषयो उर पर वारु। सभ क मन ते मिटा खंभारु।

—नानक प्रकाश अध्याय 19

यह तीनों पुस्तक, जन्म साखी भाई वाला, जन्म साखी भाई मनिसिंह जी अते नानक प्रकाश, ''दइआ कपाह संतोष सूत.'' वाला शब्द लिखते है। और लिखकर अंत में तीनो लिखते ह।, गुरु जी का जनऊ पहनाया गया। यदि यह शब्द निषेध परक ही होता, तो यह लिखते गुरु नानक जी ने उपवीत न पहना।

भाई वाला गुरु नानक जी के साथ रहा, भाई मनिसिंह जी गुरु गोविन्द सिं हजी की सेवा में रहे, यह सज्जन आजकल के सिक्खों से अधिक प्रमाण भूत हैं। ऐसा ही भाई संतोष सिंह जी भी प्रमाण हैं।

पंडित तारासिंह जी पटियाला निवासी ने गुरु मत की अनेक पुस्तकें लिखी हैं, एक पुस्तक का नाम है 'गुरमत निर्णय सागर' उसमें

उन्होंने इस प्रकरण पर लिखते समय लिखा है—

''आदि ग्रंथ साहिब के वचन जा निन्दा परक प्रतीत होते हैं, तिनका तात्पर्य ''दइआ कपाह संतोष सूत जत गढ़ी सत वट...''

पाठ से कहे जनेऊ की स्तुति में है, तथा ज्ञान—रूप जन्योपवीत की स्तुति में है, इसकी निन्द में नहीं। —गुरमत निर्णय सागर पृष्ठ 454

इस शब्द का भाव यही है, यदि कोई यज्ञोपवीत धारा करके अपेन आपको कृतकृत्य मा लें, तो ठीक नहीं। उपवीत धारण कर्ता में दया, सत्य, संतोष ब्रह्मचर्य, आदि उत्तम गुण भी होने चाहिये, यह जनेऊ इन गुणों के धारण में निमित्त होना चाहिए यही व्रत बंध की सफलता है।

गुरु जी ने स्वयं लिखा है—

पति विणु पूजा सत विणु संजम ज़त विणु काहे जनेऊ नाबहु धोवहु तिलक चढझवहु सुच विणु सोच न होई।

—राग रामकली महला 1 अष्टपदिया अष्टपदि 1

नानक सचे नाम बिन क्या टिका क्याा तग।

—आसा दी वार महला 1 वार 8

इनसे सिद्ध है, जब विणु काहे जनेऊ, सचे नाम विन क्या तग कि गुरू जी का भाव यज्ञोपवीत के न धारण करने का कभी भी न था। उनका भाव था, उपवीत धरण मात्र से मनुष्य संतुष्ट न हो जाय। इसे पहन कर जती, सती, संतोषी होना चाहिए।

इन लेखों पर एक आक्षेप हो सकता है कि उस समय गुरु नानक जी बालक थे। घर वालों वा अन्य लोगों के प्रभाव से उस समय तो उन्होंने यज्ञोपवीत पहन लिया होगा, किन्तु आगे चलकर किसी समय उतार दिया होगा।

यह आक्षेप भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनके उपवीत आगे भी मिलता है। यथा विवाह समय में वर्णन है।

महिंदी पद संजुत कोक नदं, मकरंद अनंद उदार बसाई।
गर चीर है पीत पुनीत मनोहर, जग्योपवीत महा छव छाई।
कर कंकन कंचन भूर कियूर, बनी उरमाल विशाल सुहाई।
जन शांत स्वरूप शिंगार धरे, जग में परगटयो निज भाव दिखाई।

—नानक प्रकाश अध्याय 22 छन्द 44

जिस समय गुरु नानक जी ने गृह त्याग किया उस समय का वर्णन।

'इतने महि लालो तिह आवा, इह विधि कहयो सुनाई।
अचवहु असन चलहु स्त्री नानक, दुःख कुंजर मृग राई।
भव बंधन पन्नग जे ग्रसे, वैनतेय हो तिन को।
ताकर्थ कर मुझ करुणाकर, आनन पाइ असन को। 23।
सुनकर स्त्रीमुख वचना भाखे, आनहु इह ठां जाई।
कह लालो तुमरे गल जंञू, वहर असन क्यों पाई।
चोके अंदर चलकर जेवा, उत्तम जन्म तुम्हारा।
जे इह ठां मंगवावहु सुआमी संसे खोइ हमारा। 24।
स्त्री मुख कहत धरत है जितनी, तितनो चोका जानउ।
सच रते से सुचे होए, मन को भरम मिटानो।
सुन कर लाला विगसयो तबह, आनयो भोजन जाई।

—नानक प्रकाश अध्याय 38

इस समय उपवीत हेने का यही भाव और स्थानों पर भी लिखा है। यथा—

'तां अगे क्याा देखे कि इक तपा जेहा, ते गल विच जने0 हैस'

—सूर्य वंशीय खालसा पृष्ठ 111

—जन्म साखी गुरु नानक पृष्ठ 87

तां लालो रसोई तयार करके सदण आइआ, तां लालो आखिआ, गुरुजी प्रसाद (भोजन) तयार है, तां गुरु नानक आखिआ, भाई लालो एथे ही लिआओ, तां लालो आखिआ, जी तसाड़े गजल विच जंञू हैगा, तां गुरु नानक जी आखिआ, जितनी धरती तितना ह चौका, एथे ही ले आउ। तांते लालो प्रसाद लिआके अगे आण रखिआ। —जम्न साखी गुरुनानक पृष्ठ 78

यह लेख इस बात के लिए पर्याप्त है, कि गुरु नानक जी ने यज्ञोपवीत आजीवन रखा, क्योंकि उतारने का कोइ लेख नहीं है।

प्रश्न—जैसे यज्ञोपवीत को अलंकार से लिखा है। क्या इसी भांति और किसी बात को भी अलंकार में लिखा है?

उत्तर— हां लिखा है। कृषि, दुकान, सौदागरी मसि, औषधि आदि, यथ—

सुण बेटा, असाडी खेती बाहर पाकी खड़ी है, अरजो तूं विचि जाइ कर खड़ा होवे, तां खेती क्यों उजड़े। अते सभ कोई सरीक अते देखण वाले आखण, वाह, वाह,भाई कालू का पुत्र भला होइआ है। ते सुण बेटा लोकां दाी बात है, खेती खसमां सेती। तां फेर गुरु जी बोले। हे पिता जी, हुण असां नवेकली (अनोखी) खेती वाही है, अते हल बाहिआ हैं, अते साडी जमीन वत (वत्र) आई है। सो ओह खेती असीं बहुत तकड़ी (अच्छी) तरह कीती है। फेर गुरु जी ने शब्द आखआ

मनु हाली किरसाणी करनी सरम पाणी तन खेतु।
नाम बीज संतोष सुहागा रख गरीबी वेस।
भाउ करम कर जंमसी से घर भागठ देख। 1।
बाबा माइआ साथ न होइ। इन माइआ जग मोगहिया बिरला बझै कोइ।

—राग सोरठ महला 1 शब्द 2

तां कालू ने आखिआ, बच्चा खेती नहीं करदा, तां तूं हट ही कढ बैठ, असां खत्रीआं दी खेती तां हटी है, तां गुरु जी ने दूसरी पौड़ी आखी

'हाण हट कर आरजा सच नाम कर वथ।
सुरति सोच कर भांड़ साल तिसु विचि तिसनो रख।
बणजारिआं सिउं बणज कर लै लाहामनु हसु। 2।

—राग सोरठ

तां फेर कालू ने आखियां, हे नानक जी, जे हट नहीं करदा, अतें तेरा मन फिरणेते है, तां सौदागरी घोड़िआं दी कर, तां बाबे आखिआ पिता जी असां सौदागरी भी कोती है, तां बाबे ज तीसरी पोड़ी आखी—

सुणि सासत सौदागरी सत घोड़े लै चल।
खरच वंन चंगिआइआं मत मन जाणहि मल।
निरंकार दे देस जाहि तां सुख लहहि महलु। 3।

—राग सोरठ महला 1 शब्द 2

तां कालू जी ने एह सुणकर आखिआ, हे नानक, जे तूं साडे कम कार तो रह चुकीं पर घर तां चल तें बैठ, असां तेरा खटणा छडिआ है.... किसे दी चाकरी ही कर, तां गुरु नानक जी चौथी पौड़ी आखी।

'लाइ चित कर चाकरी मन नाम कर कंम।
वंन वदिआं कर धावणी ताको आखें धंन।

नानक वेखे नदर करि चड़े चवगण वंन। 4।

—सोरठ महला 1 शब्द 2

जन्म साखी गुरु नानक देवज पृष्ठ 26—28। —सोरठ महला 1

इसी प्राकर जिस समय गुरु नानकजी को पांधे पास पढ़ने भेजा, तब यह शब्द कहा।

''जालि मोहु, घसिमसु कर मति कागद कर सार।
भाउ कलम कर चित लिखारी गुरपुछ लिख वीचार।
लिख नाम सालाहि लिख लिख अंत न पारावार। 1।
बाबा एह लेखा लिखु जाणु। जिथे लेखा मंगीऐ तिथे होइ सचानीसाण।1। —जन्म साखी पृष्ठ 27।

—स्त्री राग महला 1 शब्द 6

जैसे इन शब्दों मे लिखे, कृषि, दुकान, सौदागरी आदि को छोड़ना नही है। उसी प्रकार वह शब्द भी उपवीत का निषेध नहीं करता है। जैसे इन कर्मों को करते हुए इन शब्दों मे ंलिखे भाव बनाकर जीवन सुधारने वा सफल बनाने का आदेश है। वैसे ही जनेऊ पहनकर तत्कथित गुणें के पाल का यत्न करनाह उस शब्द का भाव है। इसीलिये आगे लिखे शब्दो मे ंयज्ञोपवीत धारण ही लिखा है।

1. खलड़ी खपरी लकड़ी चमड़ी सिखा सूत धोती कीनी।
तू साहिब हउ सांगी तेरा प्रणवै नानक जाति कैसी।

—राग आसा महला 1 शब्द 33

2. बाहर जनेऊ जिचरु जोति है नालि,
धोती टिका नाम समालि। ऐथे ओथे निवही नालि।
विणु नावे होर करम न भालि। —राग आसा महला 1 शब्द 33

इसके आगे यह विचार करना है। गुरु नानक जी ने भिन्न दूसरे गुरुवों के विषयमें क्या लेख है।

एक पुस्तक का नाम प्राचीन वीड़ां है। इसके लेखक श्रीमान गुर बखशसिंघ जी हैं। पुस्तक पर जी. बी. सिंघ लिख हुआ है। यह माडल टाउन लाहौर में रहते थे। उस पुस्तक का पाठ प्रथम लिखता हू। श्री गुरु पंथ साहिब मे ंराग रामकली महला 5 के जो छन्त हैं। उनमें अन्तिम छन्त की केवल दो पंक्तियां ही है। उन पर लिखते समय उन्होंने लिखा है—

''रामकली छन्त महला 5 विच पंजवें महले द इक छन्त दीआं दो पहलीआं तुकां (पंक्तियां) दितिआं हुंदीआं हन। बूडे संधु वाली वीड विचवी पहलीआं ही तुकां हन, पर एस 1786 वाली वीउ विचे इक होर ग्रंथ विच जो सम्वत् 1758 दा लिखिआं है, वह सारा छन्त 24 तुकां दा दिता है, असी हेठां (नीचे) नकल करदे हां—

''रण झुंझनड़ा गाउ सखी हरि एक धिआवहु।
सति गुर सेव सखी मन चिंदयड़ा फल पावहु।।
सतिगुर धिआइआ करम पाइआ अनूप बालक जंमिआ।
सतिगुर साचे भेज दीआ चिर जीवन बहु पुनिआ।।
महा आनन्द होआ सदा मंगल हरिगुण गावहु।
जन कहे नानकु सफल जात्रा सति गुरु पुरुष धिआवहु।। 1।।
अमृत भोजन इकत्र करे परवार बुलाइआ।
वंडिअहु अमृत नाम हरे जित सभ त्रिपताइआ।।
सति गुर वहके वंड कीती सगल भाउ दिवाइआ।
करमा अन्दर वंड हइ खाली कोई न जाइआ।।
सभ सिख संगत भई इकत्र महा आनन्द समाइआ।
विन वन्त नानक साम हरि की सर्व सुख मैं पाइआ।। 2।।
रीति सकल कराइआ हरि सि लिव लाई।
भदण उणेत कराइआ गुरु ज्ञान जपाई।।
गुरु ज्ञान जपिआ सुखहि दाता, चटसाल बालक पाइआ।
सगल विद्या सम्पूरा पढिआ, गोविंद रिदे मनाइआ।
जेवण वार नाम करण विरथ कोई न जाई।
विनवन्त नानक दास हरि का मेरा प्रभ अन्त सखाई।। 3।।
साथ सन्त इकत्र करे, बालक करहु मंगेवा।
साव सन्त इकत्र करे, बालक करहु मंगेवा।
थापे सजन जन कुडम भले वंडिअहु अमृत मेवा।।
अमृत पाइआ गुर ज्ञान दृड़ाइआ सगल दुःख मिटाइआ।
लगण लखाइआ धुरहु आइआ वीआहु कुड़म दिवाइआ।।
अचरज जंञ वणहि ठाकर मुनि जन ढुकेसभ देव सूरा।
जन कहे नानक काज होआ बाजे अनहद तूरा।। 4।।

इह साफ दिस रहा है, कि हरगोविंद साहिब दे जनम तों जैके विआह तक दा सारा हाल है। हरगोविन्द साहिब दे जनम दी गुरु अर्जुन देव नूं बड़ी खुशी होई। जिस तरां कि कितने ही शब्दों तों दिस रहाहॅ जनम बधाई, जिआफत, मुण्डन, जनेऊ, पांधे बिठाना, मंगनी, लगन, जंञ अते विआह सभ रीति कराई, बाजे बजाए अते गुरु साहिब सभ गलां करके खुश होए, हां इह लफज़ 'सितगुर वहके वंडिआ' कुझ अणोखे हन, अते ओनहां दे निरभान स्वभाव दे उलट हन।

—प्राचीन वीाड़ा पृष्ठ 198—200

यह शब्द गुरु अर्जुन देव जी के हैं। उन्होंने अपने सुपुत्र गुरु हरगोविंद जी का उपवीत स्वयं कराया था। इस शब्द मे 'उण्ेत' पद उपवीत का वाचक है। यह शब्द श्री गुरुग्रन्थ साहिब की प्रचलित वीड़ में नहीं है,ि किन्तु माना यही जाता है। यह शब्द गुरु अर्जुन देव ज का ही है। इसीलिए किसा किसी वीड़ में पूरा शब्द है और प्रचलित वीड़ में आरम्भ की दो पंक्तियां ही हैं।

इससे यह तो सिद्ध है कि गुरु हरगोविंद जी का उपवीत संस्कार हुआ था। गुरु विलास पाताही छः में निम्न पाठ हैः—

गुरु निदेस सुन विप्र तव, शुभ जंञू गर धार कर पूजा गुरु पूत गर, लागो पुरोहित डार।। हरगोविंद कहयो हम गरे जंञ हरि असि पाइ। कुल पुरोहित कुल रीति कर पायो गर हरपाई।।

—गुरु विलास पादसाही 6 अध्याय 5

इस पुस्तक के लेखक ने भी गुरु हरगोविंद ज क यज्ञोपवीत का होना साफ लिखा है। इस प्राकर गुरु अर्जुनदेव जी का शब्द और गुरु विलास का लेख यह सिद्ध करने में प्रमाणहैं कि इन गुरुओ का यह संस्कार अवश्य हुआ था।

आगे गुरु तेग बहादुर जही के विषय मे ंलिखते हैंः—

तिलक जंञू राखा प्रीा ताका। कीनो बड़ौ कले महि साका।

—विचित्र नाटक अध्याय 5 छन्द 13

यह लेख श्री गुरु गोविंद सिंह जह का है, इसमें गुरु तेग बहादुर जी के विषय में है, कि उनके तिलक जंञू की रक्षा प्रभु ने की।

दिल्ली नगर के लाल कि‍ा में श्री गुरु तेग बहादुर जी का चित्र है।

उस चित्र के भाल पर गोल विन्दु का तिलक है और श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने तिलक, जंञू दोनों लिखे हैं, तिलक भी यही सिद्ध करता है, कि उनके गले में उपवीत भी थ।

यही बात ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने पंथ प्रकाश में लिखी है यथा—

जा दिन ते गुरु साका करयो। विपता विच नौरंगा रहयो।

हिन्दू तुरक न करने पाये, तग तिलक गुरु रख दिखायो।

—पंथ प्रकाश पृष्ठ 554

गुरु गोविन्द सिंह जी के विवाह प्रकरण मं ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने पंथ प्राकश मे ंयह पाठ लिखा है :—

पीत पुनीत उपरना धोती जोति रवि नव छवि छाजे। पीत जनेऊ मनो वदन ससि पे विजरी विजुरी भ्राजै। —पंथ प्रकाश पृष्ठ 510

इसमे ंज्ञानी जी ने साफ ही 'पीत जनेऊ' लिखा है। इस प्रकार गुरु नानक देव जी, गुरु हरगोविन्द जी, गुरु तेग बहादुर जी, गुरु गोविन्दसिंह जी के यज्ञोपवीत धारण का लेख मिलता है। शेष गुरुओं का नहीं। तो भी यह सब क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुये थे। इसलिये सब के ही उपवीत होगा, ऐसा अनमान करना उचित ही होगा।

यदि राग आसा का 'दइया कपाह' वाला शब्द जूं का निषेध करने वाला होता, तो इन गुरुओं का उपवीत धारण का उल्लेख न होता, इसलिए वह शब्द उपवीत निषेधपरक न होकर अलंकार से अन्तर गुण धारण करने का विधायक है। यही मानना ठीक है।

यह तो हुई, श्री गुरु ग्रंथ जी के शब्द की व्यवस्था। किन्तु रहित नामों में तो सीधा निषेध है। यथा—

गुरु जी का सिख जंञू, टिके दी काण न करे अर्थात् जंञू टिका धारण न करें रहित नामा भाई चोपासिंह जी।

जनेऊ न पाइ। तिलक धागा, काठ दी माला धारे सो तन खहीआ (प्रायश्चितीय) रहित नामा भाई दयासिंह जी।

जा सिख गल महि धागा मेले। चौपड़ बाजी गनका खेले। जनम सुआन पावेगा कोटि। रहित नामा प्रहलादसिंह जी। इनकी व्यवस्था कैसे होगी।

एक उत्तर तो यह है। यह सब रहित नामे गुरु ग विन्दसिंह जी

के पश्चात् लिखे गये हैं। इस कारण इनमे जो लिखा है, आवश्याक नहीं वह मान्य है, अथवा ठीक सिद्धांत है।

दूसरे इन पर पंडित तारासिंह जी ने विचार किया है। वह इस प्रकार है।

प्रश्न—चौबीसवां। गुरमत में तिलक, माला, जनेऊ, रू, वाह्य संस्कार धारीण करने योग्य हैं वा नहीं?

उत्तर— जैसे अतर वैराग्य , विवेकादि संस्कार धरने योग्य हैं, तैसे वाह्य संस्कार मालादि भी योग्य हैं, गुरु सभी धारते रहे हैं।
अर बाह्य संस्कारों की रखया (रक्षा) हेत ही गुरु जी ने सीस दिया है। कहिआ है, विचित्र नाक में—

'धरम हेतु साका जिन कीआ। सीस दिया पर सिरर न दीआ।
तिलक जंञू राखा प्रीा ताका। कीनो बड़ा कलू महि साका।

एता विशेष है। जिस जाति मे जो संस्कार योग्य है, वह धरे । जिसको योग्य नहीं वह मत धारे। जैसे जनेऊ का धारना तीन वरणों मे ंहै, वह धारें। सूद्रों में ओर वरण संकरों में नहीं वह न धा । यांहीते प्रथम गुरु जी ने वैरागियों वत् भाई बाले और बावे बूढ़े आदि कों को पहराइआ नही। जो ब्राह्मण खत्री सिख पहरते थे, तिनका हटाइआ नही। तथा गुरु गोविन्द सिंह जी ने अमृत समय दयासिंघ का हटाइआ नहीं और चारों कोा पहराइआ नहीं। कहीं अमृत समय पहरावना लिख होवे, तो रहो उनको पहररावना परन्तु दयासिंघ का नही हटाइआ। यांते जिनको अधिकर है, हव निःशं कपहरे। हटावने में गुरु की आज्ञा नहीं ऐसे तिलक भी ग्रंथ साहिब की समाप्ति काल में अर कथा काल मे करने वत् सरवदा गुरु को चन्दन चड़ा के निसेक रके, गुरुओं ने हटाइआ नहीं। पुनः माला भी लोहे कपूरादिकों के सिमरने (माल) फेरने वत् जिस चीज की रुचि होवे उसकी फेरे, गुरु ने हटाई नहीं। —गुरमत निर्णय सागर पृष्ठ 451, 2

पंडित तारासिंघ जी की सम्मति गुरु सिद्धान्तानुसार यज्ञोपवीत ध ाारण की है।

आगे पंडित जी रहित नामों के विषय में लिखते हैं—

'जेकर रहित नामे प्रेम सुमारग जैसे गुरु जी ने बनाए होते, तब भाई मनिसिंघ जी जरूर साखी में उनका पता लिखते, लिखिआ कोई नहीं, इससे

वह गुरु की रचना नहीं, प्रेमी सिखें की है। छलिए की बात मानने लाइक तो कोई भी नहीं हागती, परन्तु सच्ची बात बालक की भी मान लेनी। इस वासते जो असल होवे, सो सची मानो ।

कोई प्रेमी लोग कहते हैं। गुरु के नाम से लिखी को ज़ेब (शोभा) देणी उचित है, मेरे को यह उचित नहीं मालूम देती। क्योंकि झूठ को ज़ेब देनी वाजब होती, तव गुरु तेगबहादुर जी बकाले मं [1]बाईस मंजीओं को ज़ेब कदेते, आप जाहर न होते गुरु हरराय जी मिटी बेईमान की पढ़ने वाले [2]रामराव जी के छल के पाठ को जेब देते, बुरा समझ के गद्दी से खारज न करते। नौमे गरु जाहर हुए, सातवें गुरु जी ने खारज कीआ, इससे निश्चय कराइआ। झूठ को जेब भुल कर भी भला लो न देवे। इसी से मनिसिंह जी ने वाणी के अर्थों का निर्णण लिखा। जो पीछे और लोक रचेंगे, तब निर्णय करना कठिन होगा। यांते उन्होंने भी जेबदेणी हटाई, जो देणी कहें, वह जाल के पिआरे हैं....वास्तव में यह निश्चय है, जो मनिसिंह जी को वीड़ समे नहीं मिली, से गुरुओ ने नहीं रची।

—गुरुमत निर्णय सागर पृष्ठ 596, 7

1. *गुरु हरिकृष्ण जी के स्वर्ग सिधारने समय सिखें ने पूछा था, अपके पीछे गुरु कौन हैं? उन्होंने उत्तर में कहा था। बाबा बकाले।*

उस समय गुरु तेगबहादुरजी अपनी नन्हाल ग्राम वकाला में रहते थे। यह बात पगट होने पर धीरमल जी आदि जो अन्य गुरु वंश में से थे, वह सब वकाले आ गये। ओर अपने—अपने स्थन बना कर सिखों से पूजा लेने लगे। उन स्थानों की संख्या बाईस थी। उनको 22 मंजियां कहा है।

अंत में गुरु तेगबहादुर जी प्रगट हुए ओर उनका प्रतिवाद किया यह भाव दिखाने को यह शब्द लिखे हैं।

2. *गुरु हर राय जी को बादशह ने दिल्ली बुलाइआ। वह स्वयं न गए ओर अपेन ज्येष्ठ पुत्र रामराय को भेज दिया।*

श्री गुरु ग्रन्थ जी में एक पाठ है। 'मिटी मुसलमान की पेड़े पई कुम्हार' रामराय जी ने इसेबद कर 'मिटी बेईमान की कहा।' अर्थात् मुसलमान शब्द को बेईमान से बदल दिया। जब गुरु हरराय जी को पता लगा उन्होंने रामराय जी को कहला भेजा, आप ने पाठ बदला है, इसलिए आप मेरे सामने न आयं, ओर अपने पश्चात् गुरु पदवी भ उसको न देकर अपने छोटे पु. हरकृष्ण जी को दी।

उपर्युक्त बात को लक्ष्य करके यह पाठ लिखा गया है।

रहित नामों के लिए भाई कानसिंह जी गुरुमत सुधाकर की भूमिका के पृष्ठ 2, 3 पर लिखते है। :–

साडे मत दे पुराणे अते नवें कविआं ने आपणी आपणी बुद्धि ओर निश्चय अनुसार, इतिहास, रहित नामे अते संस्कार विधि आदिक अनके पुस्तक रचे हैन, जिन्हां तो सानूं वेअंत लाभ अर हानि हो रही है। जद असीं आपणे मत दे पुस्तकां विच विरोध देखदे हां, तां मन भ्रम दे चक्र विच पै जांदा है, अते सानूं एह निर्णय करना औखा (कठिन) हुन्दा हे, कि गुरुमत दा सचाा उपदेशक केहड़ा (कौनसा) पुस्तक है।

–गुरमत सुधाकर की भूमिका।

इस प्रकार पंडित तारासिंघ जी और भाई कानसिंघ जी रहित नाम की प्रमाणता पर संदेह प्रगट करते हैं। इस कारण रहितनामे प्रमाण न होने से उनका जनेऊ धारण न करना लिखना भी ठीक नहीं हे, और चार गुरुओं के धारण का लेख है वही ठीक है।

प्रश्न–सब गुरु क्षत्रिय थे, और क्षत्रियों के उपनयन संस्कार होता है। इसलिये गुरुवों के यज्ञोपवीत धारण की व्यवस्था कुछ बन जाती है। किन्तु सब सिख तो क्षत्रिय नहीं हैं। इस कारण सिखों को इसके धारण की आवश्यकता नहीं।

पंडित तारासिंह जी ने गुरमत निर्णय सागर में भी ऐसा ही लिखा है ब्राह्मण, खत्रिय आदि जिनके उपनयन संस्कार होता है वह यज्ञोपवीत धारण करलें ओर शूद्रादि जिनके नहीं होता है वह जनेऊ न पहरें। इससे यही सिद्ध होात है। सिखों के लिए आज्ञा नहीं है?

उत्तर– यह तो सत्य है, जन्म से सब सिख क्षत्रिय नहीं, किनतु अमृत छकने (दीक्षित होने) पर जो लेख मिलते हैं, वह उनको क्षत्रिय सि0 करते हैं। जैसा कि ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने लिखा है :–

अब तुम सोढ वंस द्विज क्षत्रिय। अच्युत गोत्र भए सभ अत्रि।
गुरुघर जनम तुमहारे होए। पिछले जातति वर्ण सभ खोए।

–पंथ प्रकाश निवास 26

यह तो सबको ज्ञात ही होगा, गुरु रामदास जी से गुरु गोविन्द सिंह जी तक सात गुरु सोढी क्षत्रिय थे। जिस समय अमृत छकाया जाता अर्थात् सिख धम की दीक्षा दी जाती है। उस समय दीक्षित सिख को कहा

जाता है–

''अज तों तुसीं 'सतिगुरके जनमे गवन मिटाइआ' है, अते खालसा पंथ विच सामल होए हों। तुहाडा धारमक पिता स्त्री गुरु गोविन्द सिंह जी अते धारमक माता साहिब कौर जी हन। जनम आपदा केस गढ साहिब दा है। वासी आनन्दपुर साहिब दी है। तुसीं इक पिता दे पुत्र होण करके आपस विच तो होर सारे अमृत धारिआं दे धारमक भ्राता हों। तुसी पिडली कुल, किरत, करम, धरम, दा तिआग करक अर्थात् पिछली जात, पात, जनम, देस मजब दा खिलाल तक छडडे निरोल(शुद्ध) खालसा वण गए हों।

–पृष्ठ 16–17। सिख रहित मरयादा

जिस समय अमृत छकाया जाता है, यह उपदेश उस समय दिया जाता है।

भविष्य में आपके पिता गुरु गोविन्द सिंह जी हैं और माता साहिब देवा जी आपकी माता है। इसी बात को पूर्वलिखित पंक्तियों में सामने रख रक सबको सोढ़ी लिखा है यह बात अमृत छकने के समय की है। भाई कानसिंह जी ने सिखों के संबोधन करते समय, गुरमत सुधकर में यद शब्द लिखे हैं। ''श्री गुरु गोविंदसिघ साहिब अद्वितीय वीर दे सपुत्रो अते माता साहिब कोर दे दुलारे मेरे प्यारे गुरु भाइयो'' जब सब सिख गुरु गोविन्द सिंह जी और माता साहिब देवां ज के पुत्र हैं तो इनके क्षत्रिय होने में संदेह करना उचित नहीं है। अतः सिख सब सोढी क्षत्रिय ही सकझे जाते हैं।

जैसे अमृत छक कर सब सिख क्षत्रिय हो जाते हैं। वैसे ही मालवे में ''वाले मुनिया सब सिधू' की कथा प्रसिद्ध है। इसका भाव है–मालवे में सिंधू जाट है, नाभा, पटियाला, जींद के राजे ओर फीरोजपुर का बाहिया (22 ग्राम) तथा अनेक ग्राम इनके हैं। इनके अतिरिक्त वाला नाम का एक साधू था, वह भी सिंधू था। उसने जिन ग्रामों को अपना अनुयायी बनाया, वह भी सब सिंधू कहलाते हैं इसी कारण ''वाले मुनिया (शिष्य बनाया) सब सिंधू'' कहते हैं।

प्रश्न– यह तो पता लगा, सिं क्षत्रिय हैं, वह स्वयं भी अपने आप को वीर कहते हैं, लड़ो मानते हैं, क्या गुरु महाराज ने सिखों को भी यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा दी है? क्योंकि जब तक आज्ञा न हो त तक सिखे उपवीत क्यों धारण करें।

उत्तर– गुरु गोविन्द सिंह जी के समय की घटना है, उसका वर्णन पंडित तारासिंह जी ने गुरुमत निर्णय सागर में भी किया है। उसमें यज्ञापवीत की बात है।

प्रश्न– वह बात क्या है?

उत्तर– वासियां वाले सिखां ने गुरु गोविन्द सिंह जी के पास दस प्रश्न लिख कर भेजे थे। गुरु महाराज जी ने उनके उत्तर लिखवाए थे। उत्तर भाई मनिसिंह द्वारा लिखे गए थे। उनका नाम ''वाजवुल अरज' है। उनमें एक प्रश्न यज्ञापवीत विषयक है। यथा–

प्रश्न– जनेऊ पावने समय आगे सिंर मुंडवाने की रीति थी। अब सिख रोकते हैं, क्या हुकम?

उत्तर– सहजधारी के बेटे की कैंची से रीति करो, केसधारी के बेटे को दही से केसी असनान (स्नान) कराओ, जनेऊ समय। इस लेख में गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने सब सिखं को जनेऊ पहनने का आदेश दिया है। भेद इतना ही है– जहां आर्यों के क्षौर है।, वहां सहजधारी अर्थात् जिसने अमृत नहीं छका, उसका मुंडन कै।सी से किया जाय। ओर जिसने अमृत छका है, केसधरी है। वह दही से सकेश स्नान करके उपवीत पहन लें इस प्राकर सब सिखें को जनेऊ पहनने का विधान गुरु गोविन्द सिंह जी ने किया है। क्योंकि सिख सब क्षत्रिय हैं। इन लेखों से यह सिद्ध है गुरु नानक देव जी, गुरु हरगोविन्द जी, गुरु तेग बहादुर जी, गुरु गोविन्द सिहं जी के यज्ञोपवीत था।

भाई दयासिंह के था और वाजवुल अरज में सिखों का उपवीत धारण करे की आज्ञा दी गई है।

अब सिखों के नेता इसे माने वा न मानें। सिख धारण करें वा न करें, यह उनकी रुचि, श्रद्धा और इच्छा की बात है।

– + –

12.

ब्रह्म यज्ञ (सन्ध्या)

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है–

सन्ध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। 'आचमन' उतने जल को हथेली में लेके, उसके मूल ओर मध्यप्रदेश में ओष्ठ लगाके करे, कि वह जल गण्ठ के नीचे हृदय तक पहुंचे, न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थेड़ी सी होती है। पश्चात् मार्जन अर्थात् मध्यमा ओर अनामिका अंगुली के अग्र भाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के। उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य ओर जल प्राप्त न हो, तो न करें। पुनः समंत्रक प्राणायाम, मनसा परिकमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात् अधमर्षण अर्थात्पाप करने की इच्छा भी कभी न करे, यह सन्ध्योपासना एकान्त देश में एकाग्र चित्त से करे।

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः।।

–मनुस्मृति अध्याय 2 श्लोक 104

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान होगके,जी के समीप स्थित होके नित्य कर्म को करता हुाअ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारा, अर्थ ज्ञान ओर उसक अनुसार अपने चाल–चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। –सत्यार्थ प्रकाश समु. 3

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञ च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयां च यथाशक्ति न हापयेत्। –मन्त्र. अध्याय 4। 21

(ऋषियज्ञ) सन्ध्या, (दवेयज्ञ) हवन, (भूतयज्ञ) बलिवैश्यदेव, (पृयज्ञ) अतिथि यज्ञ, (पितृयज्ञ) श्राद्ध अर्थात् जीते मातापिता की सेवा यथाशक्ति न छोड़े।

अध्ययनं ब्रह्मयज्ञः। मनु. 3। 70

वेद पढ़ना, ब्रह्म यज्ञ अर्थात् सन्ध्या है।

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुासीत।

उद्यन्तमसतं यान्तमादित्यमभिध्यायन्। षड्विंश ब्राह्मण 4। 5

न वितष्ठति तु यः पूर्वा नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।

स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः। म. अ. 2। 103

इसलिये दिन ओर रात्रि की सन्धि में अर्थात् सूर्योदय ओर अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान अवश्य करना चाहिए।

जो यह सायं और प्रातः काल में न करे उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कामों से बाहर निकाल देवें अर्थात् शूद्रवत् समझें।

प्रश्न—क़िाल सन्ध्या क्यों नहीं करना?

उत्तर— तीन समय में संधि नही होती, प्रकाश ओर अन्धकार की सन्धि भी सायं प्रातः दो ही बेला में होती है, जो इसको न मानकर मध्याह्न काल में तीसरी सन्ध्या माने, वह मध्य रात्रि में भी सन्ध्योपासन क्यो न करे? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहे, तो प्रहर—प्रहर, घड़ी—घड़ी, पल—पल आरैर क्षण—क्षण की भी संधि होती है, उसमें भी सन्ध्योपासन किया करें जो ऐसा करना भी चाहे, तो हो ही नहीं सकता और किसी शस्त्र का मध्याह्न सन्ध्या में प्रमाण भी नहीं। इसलिये दोनों कालों मे सन्ध्या करना समुचित है तीसरे काल में नहीं। —सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4।

सन्ध्या शब्द के अर्थ भली प्रकार ध्यान करना, जो सन्धि समय अर्थात् प्रातः और सायं काल में किया जाता है, इसलिये इसका नाम सन्ध्या है। ब्रह्म वेद को कहते है।। इसके पाठ को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। जो मनुष्य वेद का अधिक पाठ न कर से उसके लिये कुछ मन्त्र पढ़ने के लिये ऋषियों ने नियत कर दिये हैं, सन्ध्या में वही मन्त्र पढ़े जाते हैं।

सिख पंथ में वेद पाइ और सन्ध्या दोनों का लेख मिलता है। यथ—गुरमुखि परचे वेद वीचारी। गुरमुखि परचे तरीऐ तारी। गुरमुखि परचे सुसबद गिआनी। गुरमुखि परचे अंतर विधि जानी गुरमुखि पाइऐ अलख अपार। नानक गुरमुखि मुकति दुआर।

—राग रामकली महला 1 सिध गोसट शब्द 28

इस शब्द में वेद विचार का वर्णन है।

एहा संध्यिा प्रवाण है जित हरि प्रभ मेरा चित आवै।

हरि सिउ प्रीति ऊपजै माइआ मोहि जलावै।।

गुर प्रसादी दुविधा मरे असथिर (स्थिर) संधिया करे वीचार।

नानक संधिआ करे मन मुखी जीउ न टिकै मर जमे होइ खुआर।

—बिहागड़े की बार महला 3 वार 13

यह शब्द सन्ध्या करने का विधान करता है, ईश्वर प्रेम का कारण कहता है। यदि इस द्वारा मन शुद्ध न हो तो उसे मन मुख बतलाकर निन्दनीय मानते हैं।

— + —

13.

हवन (देव यज्ञ)

वैदिक सिद्धांत में ब्रह्मयज्ञ के पश्चात् देवयज्ञ है। इसमें घृत ओर सुगन्धित सामग्री अग्नि में डाले जाते हैं यह भी संख्या के साथ साथ अर्थात् प्रातःकाल प्रथम सन्ध्या पश्चात् हवन ओर सायंकाल प्रथम हवन और पश्चात् सन्ध्या करनी होती है। आहुति देते समय वेद मनत्रों का पाठ होता है।

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है–

"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है। उसके लिये एक किसी धातु या मट्टी के ऊपर 12 वा 16 अंगुल चौकोन, उतनी ही गहरी और नीचे 3 वा 4 अंगुल परिमाण से वेदी इस प्राकर बनले अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो, उसकी चतुर्थाश नीचे चौड़ी रहे। उसमें चन्दन, पलाश वा आम्रादि के श्रेश्ठ काष्ठों के टुकड़े उसी वेदी के परिमाण से बड़े छोटे करके उसमे रखे, उसके मध्य में अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा अर्थात्! पूर्वोक्त ईधन रख दे, एक प्रोक्षणी पात्र और दूसरा प्रणीता पात्र ओर एक आजय स्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र और चम्मसा, सोने, चांदी वा काष्ठ का बनवा के प्रणांता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रखक घृत को तपा लेवे। प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिये है, कि उसेस हाथ धोने को ज लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे। फिर इन मन्त्रों से होम करे–

ओं भूरग्नये प्राणय स्वाहा। आं भुवव्रायवेऽपानाय स्वाहा।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य स्वाहा।

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़ कर एक एक आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो, तो–

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।

यद्भद्रं तन्न आसुव। .–यजु. अध्याय 30। 3

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्र से आहुति देवे। ओं भूः ओर प्राणः आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं। इनके अर्थ कह चुके हैं। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ यह है, कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो, वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमश्वेर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हें, वैसे मनुष्य को भी परोपकार करना चाहिए।

प्रश्न– होम से क्या उपकार होात है?

उत्तर– सब लोग जानते हैं, कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रो से प्राणियों को दुःख ओर सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होन से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न–चन्दन आदि घिसके किसी के लगावे या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल कर व्यर्थ नष्अ करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर–जो तु पदार्थ विद्या जानते, तो कभी ऐसी बात न कहते, क्यांकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम होता है, वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझलो, कि अग्नि में डाला हुा पदार्थ सूक्ष्म हाके फैलके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

प्रश्न–जब ऐसा ही है, तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुण और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुख कारक होगा?

उत्तर– इस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है, कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है, और अग्नि ही का सामर्थ्य है, कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकालकर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है।

प्रश्न– तो मन्त्र पढ़के होम करेन का क्या प्रयोजन है?

उत्तर– मंत्रों में वह व्याख्यान है, कि जिससे हाम करने के लाभ विदित हो जायं, और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें, वेद पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न– क्या इस होम करने के बिना पाप होता है?

उत्तर– हां; क्यों कि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध

उत्पन्न होके वायु औरजल को बिगाड़ कर रोगात्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता हे, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे धिक वायु ओर जल में फैलाना चाहिए ओर खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत ओर सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने द्रव्य से होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इसे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिए। परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है, इसलिये होम करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न– प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे, ओर एक एक आहुति का कितना परिमाण है?

उत्तर–प्रत्येक मनुष्य को सोलह सोलह आहुति और छः छः माशे घृतादि एक एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये, और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिये आर्यवर शिरोमणि महाशय, ऋषि–महर्षि राजे–महाराजे लोग बहुत सा होम करते ओर कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार था। अब भी प्रचार हो, तो वैसा ही हो जाय।

–सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 3

इस प्रकार ऋषि दयानन्द जी ने वेदमर्यादानुसार दो काल हवन करने का आदेश दिया है।

आगे श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के पाठ लिखकर सिख इतिहास का कुछ पाठ लिखूंगा।

1. तित घिइ होम जग सद पूजा पइऐ कारज सोहे।

–माझ वार महला 1। 26

2. होम जग उरथ तप पूजा। कोटि तीरथ इसनान कीजा।
चरनकमल निमिषरिदं धारे। गोविन्द जपत सभ कारज सारे।

–राग प्रभाती महला 5 अष्टपदियां 3

गुरु गोविन्दसिंह जी ने जो हवन यिका था, उसके विषय में ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने इस प्रकार लिखा है।

जग हाम बेशक करवें।
इह तो धरम हमारा सार। करत रहे पृप मुनि अवतार।।

सो तो हम भी करना चैहैं। जिसते सभ सृष्टि सुख पै हैं।।
इक तो अब दुरभिख अति भारी। है पड रहिओ न वरसत वारी।।
दूसर भारतवर्ष मझारे। महामरी पड़ रही अपारे।
त्रितीए जो नर नारी आयं। होइ रह निज धरमों खरज।।
पाप कुकरमन में सभ लागे। इसी हेत बन रहे अभागे।।
जग्य हवन लों सुकृत जे हैं, हाकम तुरक करन ना दैहैं।।
हम जब हवन जग्य करवै हैं। खुश होइ धन जल बहु बरसै हैं।।
दुरभिख नासे अन्न बहु पैहै। धरनी रस सभ विधि प्रगटै हैं।।
पवन हवन ते शुद्ध भवै है। रोग सोग सब दूर नसै है।।।
बुद्धि शुद्ध नर नारिन लै ळैं। सुकृत सब करेन लग जै हैं।।
नसे अविद्या विद्या ऐं हैं। सूरवीरता दृढ़ प्रगटैं हैं।।
वर्णाश्रमी जन हैं जेते। काइरता कर पूरन तेते।।
भेड बकरिआं सम होइ रहे। वाछित काम तुरक सबल है।।
इने वलन की पवन लगे जब। शेर वधिआइन से ह्वै है। तब।।
सूरवीरता उर में जग है। धरम पुरातन करने लग हैं।
प्रभता देह अरोग कराती। विजय गिआन संतत सुख दाती।।
निरभयता जस, गुण देवी सब। होहि प्रापत गुर घर में तब।।
बालक भाग्यवान प्रगटै हैं। रो सीतला आदि नसै हैं।।
कामादिक सब असुरी संपति! जग्य होम को पिखके कंपत।।
उत्तम गुण सत आदिक जे है।। वावन कहे वेद रिग मे हैं।।
सो अवश्य जग मे वरते हैं। जग्य हवन विधिवत जब ह्वै हैं।।

–पंथ प्रकाश निवास 25पृष्ठ 201। 202।

ज्ञानी जी ने गुरु मुख से हवन के गुण कहलवाए हैं। आगे पंडित जी इसे ठीक कहते हैं यथा–

आप हवन के नफे जो गाए। होई अवश्यमेव सब भाए।
पर उपकार जगत पर भारी। होइ आपका जग सुखकारी।।

–पंथ प्रकाश निवास 25 पृष्ठ 202

आगे हवन का वर्णन है। यथा–

आनन्दपुर तट सतलुजे गुर के बाग मझार।
हवन होन लागिओ तहां, पिख स्थान उदार।।

सत्रां सैचुरंजा चेत नवरातत्रा के मांही।
लगन महूरत सोध भले सब हवन अरंभयो बांही।।
केशव हवन करावन बैठे गुरु आहुति देते।
वरनी करनी ओर विप्रन ठानी सांती हेते।
सामग्री युत परनारे सम धारा घृत पवे है।
चार मास तहि हवन भयो जब वर्षा लगी अते है।
फिर नैणा देवी टिले पर असथल पेख सुहावन।
जाइ हवन करने गुर लागे दिजवर बैठ करावन।।

—पंथ प्रकाश निवास 26 पृष्ठ 204।

पूर्णाहुति

तब गुर सरव सामग्री हवनकुण्ड क मांही।
एकहि वेर जब पावसी चानण भए महाहि।।

—पंथ प्रकाश पृष्ठ 205।

लोक चर्चा हुई।

अब तुरकन के जुलम ते छुट जै है हिन्दवान।
मुसलिआं को गुरु मार है ठान घने घमसान।।
या विधि कर सतगुरु निज कार्य। आनन्दपुर दिन आये आर्य

—पंथ प्रकाश पृष्ठ 205।

यज्ञ का फल, जो उस समय प्रगट हुआ।

जा दिन ते जग्य होम करयो गुर, पूर रहयो जस भूर उदारे।
घोर जिते जग्य होमन क`फल, वेद भने वरते जग सारे।
वासर होन लगी मनवांछित, रेग विसूचिक लौं सव टारे।
लोगन केर स्वभव स्वते सिध, थे बदले सब काज विधारे। 3।
फैलरहे फल फूल युक्तेतरु, औ उगले धरनी रस सारे।
तेज लगो तुरके घटनो, चमके हिन्दवाइन वांग सितारे।
मै मिटियो सतईतन को सभ, ओर उपद्रव ईस निवारे।
देन लगी बहु दूध गऊ महि, होन लगे अन्न घास पारे।4।
लोग सिआने कहे मिलयों इह, होम सु जग्य गुरै बडिआई।
भारत भूमि विखै अति आनन्द, होइ गयो सतजुग निआई।
मन्द स्वभाव कुकरम क्लेस, गये उठ यों रविते तम जाई।

होत विचार घरो घर यों गुर कीरति फूली मनो फल वाई।5।

—पंथ प्रकाश निवास 26 पृष्ठ 208। 209

रोग कटावन होम महा सकती, विदतावन की सुन के।
संगत देस विदेसन ते, बहु आने लगी गुर पै गुन के।
इसमें धन भूर गुरे खरचिओ, इह सोच चढावहि दुगुन के।

—पंथ प्रकाश पृष्ठ 209

रोग गकटावन होम महा सकती, विदतावन की सुन के।
संगत देस विदेसन ते, बहु आने लगी गुर पै गुन के।
इसमें धन भूर गुरे खरचिओ, इह सोच चढावहि दुगुन के।

—पंथ प्रकाश पृष्ठ 209

इस सारे लेख का भाव यही है। गुरु गोविन्द सिंह जी ने यज्ञ करना श्रेष्ठ पुरुषों का कर्तव्य बताया, ओर उसके फल रोग निवृति, समय समय पर वर्षा होना, दुर्भिक्ष का मिटना, जना मे सुख होना, लोगो मे सदभावना आदि आना माना।

पुनः उन्होंने कई मास यज्ञ किया, पण्डित केशव जी ब्रह्मा थे अन्य ब्राह्मण अन्य कार्य करते थे। गुरु जी स्वयं यजमान रूप से आहुत देते थे।

यज्ञ समाप्त हुआ, लोगों में नाना प्रकार के वाद चले और देश में उस या के अच्छे फल हुए। उससे गुरुजी की ख्याति भी बढ़ी इस प्रकार इस लेख से सिद्ध है,गुरु गोविन्दसिंह जी ने स्वयं हवन किया, वह हवन के विरोधी न थे। पोषक ही थे।

इस समय भी सिख पंथ में एक नामधारी नाम का दल है उसके प्रवर्त्तक सतगुरु राम सिंह जी भैणी राइयां जिला लुध्याना वाले हैं, इस समय उस गछ्दी पर गुरु प्रतापसिंह जी सुशाभित हैं उनमें अब भी हवन का प्रचार है।

उनके उत्तम काग्र करने वाले श्रीमान निधानसिंह जी आलिम हैं। उन्होंने हवन प्रकाश नाम की एक पुस्तक लिखी है। मैं आगे उसका थोड़ासा पाठ लिखता हूं। ताकि पाठकों को उनका पक्ष भी ज्ञात हो जाय।

"स्त्रह सतगुरु रामसिंघ जी ने अपने धरम प्रचार दे प्रोग्राम विच यग्य होम नूं विशेष रूप विच प्रचारिआ है। हर दीवान दी समापति दे समे होम कीता जांदा है। हवन दी मरयादा जो श्री सगुरु रामसिंघ जी ने

उचारन कीती, इउं है। पहलां चौका देणा होम दी जगह, लकड़ी होम दी अग नूं, पक्खे नाल झलणा पंजा आदमीयां ने होम विच पोथीआं तों वाणी पढनी, चौपाई, जपु, जाप, चण्डी दी वार, उग्र दन्ती, चण्डी चरित्र, अकाल उस्तुति। छवां आदमी आहुति पावे, सतवां नाल माल जलदा छिटा देवे थोड़ा थोड़ा। बधेरे वा कवी हवन करने वाले सत सिंघ इसनान करके सुध देही, सुध वसत्र पहन के तयार वर तयार हो जाण। हवन वाले थां नूं लिपण पोचण वाली मिटी विच गोहा नहीं, रलौणा वेरी जां कपाह दीआं लकड आं निकीआं निकीआं करके हवन कुंड विच जोड देणीआं ते विच इक सावत नलेर (नारियल) रखके वसंत्र जगाणी। उपरंत (पश्चात्) अरदास करे वाणीआं पढनीआं। वाणीआं दी समापती ते फेर अरदास करे जैकारा गजादेण (बोस करना) —हवन प्रकाश पृष्ठ 16—17

इस समय घृतादि सुलभ नहीं है। इस कारण हवन करने में असुविधा है। शतपथ ब्राह्मण में ऐसे समय के लिए ही लिखा है।

[3]शतपथ ब्राह्मम में राजा, जनक ओर याज्ञवल्क्य का संवाद है यदि घृत न होवे, तो हवन कैसे करे, दुग्ध से, दुग्ध न हो तो यव आदि ओषधियों से हवन करें। यदि वह भी न हां, तो अन्य अन्न से, उसके अभाव से जगल की वनस्पितयों से, यज्ञीय वनस्पति न हो तो जल से हवन करले। श्रद्धा से ही करले। सर्वाभाव में श्रद्धा से वेद मंत्रों का पाठ कर लिया जाय।

इस प्रकार देवयज्ञ अर्थात् हवन नित्य कर्म होने से मनुष्य को यथाशक्ति करने का प्रयत्न करना चाहिये। क्यांकि मनु जी ने लिखा है, 'यथाशक्ति न हापयेत' अर्थात् यथाशक्ति इसे न छोड़े।

— + —

3. *तद्धैतज्जनको वैदेहः। याज्ञवल्क्यम्पप्रच्छ वेत्याग्निोत्रं याज्ञवल्क्य 3 इति, वेद सम्राडिति, किमिति पथ एवेति।2। यत्पयो न स्यात्। केवल जुहुया इति, ब्रीहियवाभ्यमिति, यद्ब्रीहि यवौ न स्यातां केन जुहुया इति, या अन्या ओषध्यय इति, यदन्या ोषधयो न स्युः केव जुहुया इति, या आरण्या ओषधय इति, यदारण ओषध ायो न स्युः केन जुहुवा इति, वानस्पत्येनेति, यद्वानस्पत्यन्न स्पात्केन जुहुआ इत्यद्धिरिति, यदोपो न स्युः वेन जुहुया इति,। 3। स होवाच न वा इह तर्हि किंचनसीदधैतद् हूयतैव सर्त्य श्रत्रद्वायामिति वेत्थाग्निपहोत्रं यावल्क्य धेनुशतं ददामीति होवाच।4।* *—शतपथ कांड 11 अध्याय 3 ब्राह्मण 1*

14.

श्राद्ध (पितृ यज्ञ)

श्राद्ध शब्द का भाव है श्रद्धापूर्वक माता पितादि की सेवा करनी। कोई एक कहते हैं, जिस समय माता—पितादि का स्वर्गवास हो जावे, उस समय उनके नाम पर ब्रह्मणों को जो भोजनादि देना हे वह श्राद्ध हैं। वह श्राद्ध भी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, पितामही, प्रपितामही पर्यन्त ही होता है। उसके आगे नहीं।

इसमें चिंतनीय यह है कि पितादि संज्ञा, आत्मा की है, वा शरीर की है, अथवा दोनों की है। यदिकहें, आतमा की है, तो उपनिषद् में लिखा है —

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छशरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।

—श्वेताश्वतर अध्याय 5 मन्त्र 10

जीव, न स्त्री है न पुरुष है ओर न ही नपुंसक है, वह जिस शरीर को प्राप्त होता हे वही संज्ञा हो जाती है।

इसलिए आत्मा का नाम पितादि नहीं हो सकता। यदि शरीर का नाम है, तो शरीर भौतिक है, मृत्यु पश्चात् वह जला दियाा जाता है। यह नष्ट हो गया, अतः वह भी पितादि सां वाला नहीं है।

शेष पक्ष रहा उभय का, शरीर तथा आत्मा जीवितावस्था में ही मिले होते हैं। मरण काल में पृथक हो जाते हैं, अतः श्राद्ध जीवित माता—पितादि का होना ही युक्तियुक्त है। मृतक का नहीं।

ऋशि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में इस विषय पर यह लिखा है—

तीसरा पितृया अर्थात् जिसमे देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने—पढ़ाने हारे, पितर जो माता पितादि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी। पितृ यज्ञ के दो भेद हैं। एक श्राद्ध, दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है, श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्रद्धम्। जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसका श्रद्धा, और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और ''तृपयन्ति

तर्पयन्ति येव पितृन् वत्तर्पणम्'' जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् वर्तमान तामा पितादि पितर प्रसन्न हों ओर प्रसन्न किए जायं, उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीतितों के लिए हे, मृतकों के लिए नहीं।..... सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हो उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे, उस उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध ओर तर्पण कहाता है।

—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4

इस लेख के अनुसार आर्य समाज जीवित पितरों का श्राद्ध मानता है।, मृतकों का नहीं।

आगे श्री गुरुग्रन्थ जी के शब्द लिखता हूं जिसमें मृतकों के श्राद्ध का निषेध है।

1. आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछे पतल सदिहु काव।
नानक मनुमुख अंध पिआर। वाझ गुरु डुवा संसार।

—माझ मार महला 1 वार 1

2. जीवत पितर न माने कोऊ मूए सिराध कराही।
पितर भी वपुरे कहु किउं पावहि कऊआ कूकर खाही।1।
मोकउ कुलस वतावहु कोई। कुसल कुसल करते जग विनसे
कुसल भी कैसे होई। 1। रहाउ। माटी के कर देवी देवा तिसु आगे जउ देही। ऐसे पितर तुमहारे कहीं अहि आप न कहिआ न लेही।

—राग गोड़ी कबीर ज शब्द 45

इन दोनों शब्दों में मृतक श्राद्ध का निषेध है आगे लिखता हूं, जो कम्र करते हैं उनको ही मिलता हैं।

3. नानक एथे कमावे सो मिले आगे पाइ जाइ।

— राग विहागड़ा वार महला 1 वार 19

4. कहो पूत झगरत इंउ संग वाप। जिनके जणे वडीरे तुम हहु तिन सिउ झगरत पाप। —सारंग महला 4

इस भांति जीवित माता—पिता की सेवा शुश्रुषा करनी ही श्राद्ध ह। मृतक प्राणी अपने कर्मानुसार अन्य जन्म प्राप्त कर लेता है। इसके लिऐ यहां कुछ करना शास्त्रविहित नहीं है।

— + —'

15.

अतिथि यज्ञ

यदि किसी स्थान पर जहां भोजनादि का प्रबंध है, कोई अतिथि आजाए तो उसको भोजन वश्य मिलना चाहिए।

सत्यार्थ प्रकाश में अतिथि के विषया में इस प्रकार लिखा है— ''अतिथि सेवा—अतिथि उसको कहते हैं, कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो, अर्थात्अकस्मात् धार्मिक, सम्योपेदशक, सबके उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला, पूर्ण विद्वान्, परमयोगी सन्यासी गृहस्थ के यहां आवे, तो उसको प्रमि पाद्य, अर्ध्य ओरआचमनीय तीन प्रकार का जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बिठलाकर खान—पानादि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा श्रूष करके उसको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्संग कर उनसे ज्ञान, विज्ञान आदि जिससे धर्म, अर्थ, काम ओर मोज्ञ की प्राप्ति होवे, ऐसे ऐसे उपदेशों का श्रवण करे ओर अपना चाल चलन भी उनके उपदेशानुसार रखे समय प के गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सतकर करने योग्य हैं।

परन्तु — पापण्डिनो विकर्मस्थान वेडालतृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाड्मात्रेणापि नार्चयेत्। —मनु 4। 30

(पाषण्डी) अर्थात् वेद निन्दक, वेद विरुद्ध आचरण करने हारा (विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्ता, मिथ्या भाषणदियुक्त, जैसे विडाला छिप ओरस्थिर रहकर ताकता ताकता झपट से मूसे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता हे, वैसे जनों का नाम (वैडाल वृत्तिक) (शठ) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जाने नहीं, औरों कहा माने नहीं (हैतुक) कुतर्की, व्यर्थ बकने वाले जैसे कि आजकल के वदान्ती बकते हैं, हम ब्रह्म और जगत् मिथ्या है, वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है, इत्यादि गपौड़ा हांकने वाले (वकवृत्ति) जसे वक एक पैर उठा ध्यानावस्थित के समान होकर झट मछली के प्राण हरके, अपना स्वार्थ सिद्ध करता है, वैसे आजकल के वैरागी ओर खाकी आदि हठी, दुराग्रही वेद विरोधी हैं, ऐसों का सत्कार वाणी मात्र से भी न करना चाहिए। क्योंकि इनका सत्कार करने से

वे बृद्धि को पाकर संसार को अधर्म युक्त करते हैं। आप ता अवनति के काम करते ही हैं, परन्तु साथ में सेवक को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबो देते हैं।.....जब तक उत्तम अतिथि जत् में नहीं होते, तब तक उन्नति भी नहीं होती, उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती, ओर सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है, और मनुष्य मात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। बिना अतिथियों के संदेह निवृत्ति नहीं होती, संदेह निवृत्ति के बिना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के बिना सुख कहां। —सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4

अतिथि—जिसकी आने और जाने में कोई भी निश्चित तिथिन हो, तथा जो विद्वान् होरक सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तर के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है, उसको अतिथि कहते हैं।

—आयोद्देश्य रत्नमाला 63

स्वामी जी ने इस लेख में अतिथि सेवा की जाय, अतिथि कोन है और कौन नहीं हे, अतिथि से लाभ क्या होते हैं, आदि बातें लिखी हैं, इसी भाव` श्री गुरु ग्रन्थ जी के कुछ शब्द आगे लिखता हूं।

1. सलोक महला5।
हरि हरि नामु जो जन जपै ो आइआ परवाणु।
तिसु जन के बल हारणै जिन भजिआ प्रभनिरवाणु।
जनम मरण दुःख कटिा हरि भेटि आ पुरुष सुजाणु।
सन्त संग सागर तरे जन नानक सचा ताणु। 1।
तहला। भलके उठ पराहुणा तेरेघर आवउ।
पाउ पखाला तिसके मन तन नित भावउ।
पाउ पखला तिसके मन तन नित भावउ।
नाम सुणौ नाम संग्रहैनामे लिव लावउ।
ग्रिहु धन सब पवित्र होइ हरि के गुण गावउ।
हरिनाम वपारी नाका बड भागी पावउ।

—गौड़ीकी वार महला 5 वार 1

3. सलोक कमहला 3।
दरवेसी को जाणसी विरला को दरवेसु।
जे घर घर हंढै मंगदा ध्रि जीवन ध्रिग वेसू।

जे आसा अंदेसा तज रहे गुर मुख भिखिआ नाउ।
तिसके चरण परखालीअहि नानक हउ बलिहारे जाउ।

—विहाडा वारमहला 4 वार 6।

4. सलोक महला 3। अभिआत एह न आखिअन जिनके चित मही भरम। तिसदे दिते नानका तेहो जेहा धरमु।
भे निरंजन परम पद ताका भूखा होइ।
तिसका भोजन नानका विरला पाए कोई।1। —महला 3।
भि आगत एहि न आखीअन जि पर घर भोजन करेनि।
उदरै कारण आपणे वहले भेख करेनि।
अभिआगर सोइ नानका जि आत्मा गौण करेनि।
भाल लहनि सहु आपणा निज धर रहण करेनि।

—राग रामकली वार महला 3 वार 6।

5. कबीर जा घर साध न सेवीअहि हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि।

—सलोक कबीर 192

6. अभिआगत एहि न आखीअनि जिनके मन महि भरम।
तिनके दिते नानका तेहो जेहा धरमु। 1।
अभै निरंजन परम पद ताका भीखकु होई।
तिसका भोजन नानका बिरला पाए कोई।

—सलोक वारां ते वधीक महला 3

इन शब्दों में भी जो पाखण्डी हैं उनको अतिथि नहीं माना गया ओर अतिथि सेवा का विधान भी है। अर्थात् सच्चे अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिये।

— + —

16.

वर्णाश्रम

चार आश्रम ओर चार ही वर्ण हैं।

चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास।

चार वर्ण—गृहस्थाश्रम` ही भेद चार वर्ण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

इनमें जनम से कोई भी नहीं सब गुण कर्म, स्वभाव से होते हैं। ऋषि दयानन्द जी ने लिखा है—

वर्ण—जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है, वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है।

वर्ण के भेद—जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ओर शूद्रादि हैं, वे वर्ण कहाते हैं।

आश्रम—जिनमें अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण ओर श्रेष्ठ काम किये जायें उनको आश्रम कहते हैं।

आश्रम के भेद—जो सद्विद्यादि शुभ गुणों का ग्रहण, तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी, जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करेन कके लिए गृहस्थ। जो विचार के लिये वानप्रस्थ और जो सर्वोपकार करने के लिये सन्यासाश्रम होता है। वे चार आश्रम कहाते हैं। —आर्योद्देश्य रत्नमाला

वर्णाश्रम—गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं।

—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

जन्म से वर्ण न होने और वर्ण परिवर्तन में प्रमाण—शूद्रो ब्राह्मणतामगति

ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।

क्षत्रियाज्जातमेवंतु विद्यद्वैश्यात्तथैव च।

—मनुस्मृति अ. 10। 65

शूद्र में यदि ब्राह्मण के गुण हों, तो वह ब्राह्मण हो जाय, इसी प्राकर यदि उसमें क्षत्रिय वा वैश्य के गुण हों, तो क्षत्रिय, वैश्य हो जाय। इसी

भांति यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से जिसमें जो गुण हो वह वही हो जायगा।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्व पूर्व वर्णामाद्यते जातिपरिवृतौ।

अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ।

—आपस्तम्भ धर्मसूत्र। 2। 5। 10, 11

धर्माचार से जघन्य वर्ण उच्चवर्ण को प्राप्त हो जाता है। इसी तरि अधर्माचार से उच्च वण जघन्य वर्ण को प्राप्त हो जाता है।

वर्णों के गुण कर्म—

ध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणनामकल्पयत्। —मनु अध्याय 1। 88

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना,दान लेना ब्राह्मण के कर्म हैं।

शमो दमस्तपः शैचं क्षन्तिरार्जवमेवच।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।

—गीता अध्याय 18। 42

शम, दम, तप, शौच, शांति, आर्जय, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक भाव यह ब्राह्मण के गुण कर्म हैं।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनेव च।

विषेयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः। —मनु. अध्याय 1। 89

प्रजा की क्षा,दान, यज्ञ, पढ़ना, विषयो में अप्रसक्ति क्षत्रिय के गुण हैं।

शौर्य तेलो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्। —गीता 18। 43

शूरता, तेजस्विता, धर्य, दक्षता, युद्ध से न भागना दान देना, ईश्वरभाव अर्थात् पक्षपात रहित होकर न्याय युक्त व्यवहार करना, क्षत्रिय के गुण कर्म हैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।

वाणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च। —मनु. 1। 90

पशुपालन, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, वृद्धि प्राप्त करना, कृषि करना वैश्य के कर्म हैं।

एकमेवतु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।

एतेषामेव वर्णानां शुश्र षामनसूयया। —मनु. 1। 91

जैसे स्वामी आज्ञा दे, वैसे कर्म करना यही शूद्र का कर्म है।

ब्रह्मचारी—वर्जयेन्मधु मांसंच गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।1।
अभ्यंगमंजनं चाक्ष्णोरूपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनतम्। 2।
द्यू तं च जनवादं च परिवादं च तथाऽनृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमपघातं परस्य च। 3।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि सकन्दन् रेतो हिनस्ति ब्रतमात्मनः। 4।

—मनुस्मृति अध्याय 2 श्लोक 177—180

मद्य, मांस, गन्ध, माला,रस, स्त्री—संग (कन्या को पर पुरुषसंग) खटाई, हिंसा, अंगों का मलना, अंजन, जूता और छाता धारण करना, काम क्रोध, लोभ मोह, नाचना, गाना, बाजा बजाना, जुआ खेलना, अन्य व्यक्तियों की बातें करना निन्दा, झूठ विषय बुद्धि से पुरुष का स्त्री को, स्त्री का पुरुष को देखना, दूसरों की हानि करना, यह सब काम ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी छोड़ दें।

विवाह करके पतिव्रत, पत्नीव्रत रहकर ऋतुगामी होकर अपने वर्ण के कर्मों का करना गृहस्थ आश्रम है।

वानप्रस्थ और सन्यास के कर्म पूर्व लिख दिये हैं उनका पालन करना यह संक्षेप से वर्णाश्रम की वैदिक मर्यादा है।

आगे भ गुरुग्रन्थ ज तिथा सिख लेखकों के लेख लिखता हूं—

"सिख र्ध विचजाति केवल कर्मानुसार है, जनम नाल एण्सदा सम्बन्ध नहीं। विद्वान गियानी ब्राह्मण, सूरवीर, शस्त्रधारी, छत्री, व्यापारी या कृषाण वैश्य अर टहल मजदूरी नाल उपजीव का करने वाला शूद्र हैं। जो सेवक विद्वान होके उपदेश करदा है, तां ओही ब्राह्मण हैं और शस्त्रधारी कृषाण छत्री पद नाल बुलाया जांदा है।

—गुरमत प्रभाकर कृत भाई कानसिंह जी पृष्ठ 404

इसी पुस्तक के पृष्ठ 408 पर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास चार आश्रम लिखे हैं।

पंडित तारासिंघ जी गुरु गिरार्थ कोष में इनको विस्तार से लिख है मनुष्य पणे से सब सम हैं, और गुण भेद से ब्राह्मणादि चार विभाग ईश्वर ने रचे हैं। शम दमादिक मर्मों के अनुसार रचे हैं। तथाहि—जिसमे सतोगण मुख्य वह ब्राह्मण, जिसमें रजोगुण मुख्य, सतोगुणगौण वह खत्री जिसमें रजोगुण मुख्य तमोगुण गौण वह वैश्य, जिसमे तमोगुण मुख्य रजोगुण गौण वह शूद्र, यह चारों में गुणों का विभाग है।

तथा जिसमें शम, दम, तप, शैच, छमा, रिजुता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकपण वह ब्राह्मण।

जिसमें शूरवीरता, तेज, धैर्य, दख्यता (दक्षता) होवे, युद्ध में सनमुख जाणा, दान देना, कामों मे पुरुषों को प्रेरण वह खत्री।

जिसमें खेती करना, पसू पालना, खरीदना बेचना, करम वह वैश्य।

जिसमें तीनों वरणों की सेवा वह सूद्र।

यह चारों के करमों के विभाग हैं, इस प्रकार मनुश्यपने से सम भी मनुष्यपन का इन गुण करमों के अनुसार ब्राह्मणदि विभाग है। ब्राह्मण ब्राह्मणी आदिकों से जनमे ब्राह्मणदिक ऐसे माता पिता रूप खेत बीज से नहीं। —गुरमत निर्णय सागर पृष्ठ 441+442

1. ब्राह्मण, खत्री, सूद, वैस चार वरण चार आश्रम हहि जो हरि धिआवे सो प्रधान। —राग गौंड महला 4 शब्द 7

2. खत्री, ब्राह्मण, सूद कि वैसु, निरति न पाईआ गणी सहसु। ऐसा दीवा वाले कोइ। नानक सो पारंगत होइ।

—रामकली महला 1 शब्द 7

3. खत्री, ब्राह्मण, सूद, वैस को जापै हरि मंत्र जपैनी।

—राम विलावल महला 4 शब्द 5

4. खत्री, ब्राह्मण, सूद, वैस सभ एकै नाम तरानथ।

—गौड़ी थिति महला 5 शब्द 10

5. खत्री, ब्राह्मण, सूद, वैसु उपदेस चहु वरण कउ साझा।
गरमुख नाम जपै उधरै सो कलि महि घट घट नानक माझा।

—राग सुही महला 5 शब्द 50

अब तक चार वर्ण तथा आश्रम वाले शब्द कहे, आगे लिखते है।कि ब्राह्मण किसे कहते हैं—

7. सो ब्राह्मण जो ब्रह्म वीचारै। आप तरै सगल कल तारै।

—धनासरी महला 1 शब्द 7

8. सो ब्राह्मण ब्रह्म जो विन्दे हरि सेती रंग राता।

—श्री राग महला 3 अष्टपदिया अष्टपदि 22

9. मन की पत्री वाचई सुखी हू सुख सार
सो ब्राह्मण भल आखीऐ जे बुझे ब्रह्म वीचार।
आइआ ओह परवाण है जि कुल का करे उधार।
अगै जाति न पूछीऐ करणी सबद है सार।

—मारू वार महला 3 वार 22

10. ब्रह्म विन्दहि ते ब्रह्मण जे चलहि सतगर भाइ।
जिनके हिरदे हरि बसे हउ मैं रोग गवाइ।
गुणरवहि गुण संग्रहि जोति जोत मिलाइ।
इस जुग महि विरले ब्राह्मण ब्रह्म विन्दहि चित लाइ।
—राग विलावला वार महला 4। सलोक महला 2 वार 3

11. सो ब्राह्मण जो विन्दे ब्रह्म। जप तप संजम कावे करम।
सीत संतोष का रखे धरमु। बन्धन तोड़े हेवे मुकति। सोई ब्राह्मण
पूजण जुगत। सलोक वारां ते वधीक। सलोक 16

12. सो पण्डित जो मन परबोधै। राम नाम आतम महि सोधै।
राम नाम सार रस पीवै। उस पंडित के उपदेस जग जीवै।
हरि की कथि हिरदे बसावै। सो पंडित फिर जोनि न आवै।
वेद पुरान सिमृति बूझे मूल। सूषम महि जाने अस्थूल।
चहु वरना कउदे, उपदेसं नानक उस पंडित कउ सदा आदेस।
बीच मंत्र सख को गिआन। चहु वरना मह जपै को नाम।
जो जो जपै तिसकी गति होई साथ संग पावै जन कोइ।

—राग गौड़ी सुखामनि महला 5 अष्टपदि 9।

13. जाति का गरब न कीरअहु कोई। ब्रह्म विन्दे सो ब्राह्मण होइ। 1। जाति का गरव न कर मूरख गवारा। इस गरव ते चलहि बहुत विकारा। रहाउ। चारे वरन आखे सभ कोई। ब्रह्म विन्द ते सभ ओपति होई। माटी एक सकल संसारा। बहु विधि भांडे घड़े कुम्हारा। पंच तत मिल देही का अकारा। घटिवधि को करे वीचारा। कहु नानक इह जीउ करम बंध होई

बिन सतगुर भेटे मुकति न होई। —राग भैरउ महला 3 शब्द 1।

14. ब्राह्मणह संबि उधरणैं ब्रह्म करम जि पूरणह!

—सलोक सहसकृति म. 5। 65

15. गरभ वास महि कुल नहीं जाती। ब्रह्म विन्द ते सभ उतपाती।1। कहुरे पंडित बामन कबके होए। बामन कहि कहि जनम मत खेए।1। रहाउ। जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाइआ। जऊ आन वार काहे नहीं आइआ। 2। तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध। 3। कह कबीर जो ब्रह्म वीचारे, सो ब्राह्मण कहि अति है हमारे। 4।

—राग गोड़ी कबीर जी शब्द 7

16. खत्री सो जो करमां का सूर, पुत्र दान का करे सरीर।
खेत पछाणै बीजे दान। सो खत्री दरगह परवाण।

—सलोक वारां ते वधीक महला 1 शब्द 17

ब्राह्मण विषयक अनेक शब्द हैं, क्षत्रिय विषयक एक ही शब्द है। वैश्य और शूद्र विषयक मुझे कोई शब्द नहीं मिला अतः लिखा नहीं। हां, चार वर्ण कहने ले अनेक शब्द लिख दिये हैं ओर चार आश्रम कहने वाले भी लिखे हैं।

इससे प्रतीत होता है गुरु जी वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से मानते थे। ऐसा ही पण्डित तारासिंह जी भाई कान्हसिंह जी लिखते हैं।

— + —

17.

तीर्थ

आजकल अनेक तीथ्र माने जाते हैं। कहीं स्नान, कहीं दर्शन, कहीं की यात्रा आदि से पाप नाश और पुण्य उत्पत्ति मानकर लोक ऐसा करते हैं।

सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास मं ऋषि ने इस विषय पर लिखा है :–

प्रश्न–तो कोइ तीथ्र नाम स्मरण सत्य है वा नहीं?

उत्तर– हैं। वेदादि सत्य शस्त्रासें का पढ़ना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकर, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतथि, माता पिता की सेवा, परमश्ेवर की स्तुति, प्रार्थना, उपसना, शांति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ ज्ञन, विज्ञान आदि शुीा गुण कर्म दुःखो से तराने वाले होने से तीथ्र हें, और जो जल स्थलमय हैं, वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते, क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि' मनुष्य जिस करके दुःखों से तरे, उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारने वले हैं।

–सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 11 पृष्ठ 207

''तीर्थ''–जिससे दुःख सागर से पार उतरे कि जो सतयभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्या दानादि शुभ कर्म हैं, उन्हीं को तीर्थ समझता हूं, इतर ज स्थलादि को नहीं।

–स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

आगे श्री गरुग्रंथ जी के शब्द इस प्रकार है।–

1. जतु सतु तीरथ मजन नामि। अधिक विचार करउ किस कामि। नर नाराइणअन्तर जामि। –राग गौड़ी महला एक शब्द 8

2. गंग वनारसि सिफत तुमारी नावे आतम राउ।
सचा नावण ता थीऐ जा अहिनिसि लागे भाउ।

–आसा महला 1 शब्द 32

3. गुर सागरो रतनागरु ति रतन घनेरे राम।
करि मजनो सपतसरे मन निरमल मेरे राम।
निरमल जल नाए जा प्रभ भाए पंच मिले वीचारे।
काम करोध कपट विखिआ तजि सचुनाम उरधरे।
हउमे लोभ लहर लव थाके पाए दीन दइआला।
नानक गुर समानि तीर्थ नहीं साचे गुरु गोपाला।

–राग आसा महला 1 छन्त 2।

4. तीरथ नावण जाउ तीरथ नाम है। तीरथ सबद बीचार अंतर गिआन है। गुरु गिआन साचा थान तीरथ इस पुरुव सदा दसाहरा। हउ नाम हरिका सदा जाचउ देहु प्रभु धरणी धरा। संसार रोगी नामु दारू मैल लागे सच बिना। गुरवाक निरमल सदा चानण नित साच तीरथ मजना।

–राग धनासरी महला 1 छन्त 1

5. सच वरत संतोष तीरथ गिआन धिआन इसनान।

–राग सारंग वार महला 4। महला 1 सलोक वार 21

6. तीरथ धरम बीचार नावण पुरवाणिआ।

–मलार वार महला 1 वार 1

7. हउ सतगुरु सेवी आपणा इकमन इक चित भाइ।
सतगुरु मनकाना तीरथ है जिसनो देह बुझाइ।
मन चिंदिआं वर पावणा जो इछे सो फल पाइ।

–स्त्री राग महला 3 शब्द 1

8. सो अगै तीरा होइ तां मल लहै छपड़ आनाते सगवी मल लाए। तीरथ पूरा सतगुरु जो अनदिन हरि हरि नाम धिआए।

–राग माझ वार महला 4 वार 5

9 प्रभ के चरन मन महि धिआन। सगल तीरथ मजन इसनान।

–राग गौड़री महला 5 शब्द 146

10. आठ पहर सिमरहु प्रभ नामु। अनिक तीरथ मजन इसनान।

–गौड़ी महला 5 शब्द 95

11. कर संगति तू साध की अठसठ तीरथ नाउ।
जीउ प्राण मन तन हरे साचा एह सुआउ।
ऐथे मिलाहि बडाइआं दरगह पावहि थाउ।

—स्त्री राग महला 5 शब्द 85

12. गंगाजलु गुरु गोविंद नाम।
जो सिमरहि तिसकी गति होवै पीवत वहुड़ न जोनि भ्रमास।

—भैरउ महला 5 शब्द 8

13. कबीर गंगा तीर जु धर करहि पीवहि निरमल नीर।
बिन हरि भगति न मुकति होइ इउ कहि मरे कबीर।

—सलोक कबीर जी 54

14. इड़ा पिंगुला उदर सुषमना तीन वसहि इक ठाई।
वेणी संगम तिह परागुमन मजन करे तिथाई।

—रामकली वेणी शब्द 1

15. अतंरˆलु जे तीरथ नािवे तिसे बैकुंठ न जाना।
लोक पतीणे कछु न होवे नाही राम इआना।1।
पूजहु राम एक ही देवा। साचा नावण गुरु की सेवा। 1 रहाउ
जल केमजनि जे गत होवै नित नित मेंडुक नावहि।
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिर फिर जोनि आवहि। 2।
मनहु कठोर मरेहि वानारसि नरक न वांचिआ जाई।
हरि का सन्त मरे हांडवे त सगली सेन तराइ। 3।

—आसा कबीर शब्द 37

यह सब शब्द दर्शन, स्नानादि का निषध करते हैं, इससे सिद्ध है गुरु जी इन तीर्थों को इस रूप में न मानते थे। जैसे इस वा उस समय लोग मानते हैं किन्तु कुछ शब्द इनसे विपरीत भी मिलते है।, उनमें से भी कुछ लिखता हूं, ताकि पाठक देखकर ठीक ठीक निश्चय कर सकें।

1. सत गुरु पुरुष अंम्रितसर वडभागी नावहि आइ।
उन जनम जनम की मैल उतरे निरमल नाम द्रिहाइ।

—स्त्री राग महला 4। 66

2. हउमैं मैल सब उतरी मेरी निंनड़ीए हरि अंम्रित हरि सर नाते राम। —राग विहागड़ा वार महला 4 वार

3. हम मैल भरे दुहचारिआ हरि राखहु अगी अंडु.।
गुरु अंम्रित सर नावालिआ सभलाथे किलविष पंडु.।

—सूही महला 4 शब्द 60

5. राम दास सरोवर नाते। सभ उतरे काम कमाते।

—राग सोरठ महला 5 शब्द 65

6. संतहु राम दास सरोवर नीका। जो नावे सो कुल तरावे उधार होइ है जीअका। —राग सोरठ महला 5 शब्द 57

7. वसदी सघन अपार अनूप ामदास पुर।
हरिहां कसमल जाहिं नाईए रामदास सर।

—महला 5 पुनहे 10

यह सब शब्द अमृतसर तालाब में स्नान करने से पाप नाश बतलाते हैं। गुरु रामदास जी के शब्दां में अमृतसर शब्द है, गुरु अर्जुन जी ने रामदास सरोवर लिखा है। ध्यान रहे प्रथम गुरु अमरदास जी के समय में इसका नाम 'गुरु का चक' था। जब गुरु रामदास जी आकर रहने लगे तो इसका नाम रामदासपुर हो गया, जिस समय गुरु अर्जुनदेव जी ने यह तालाब पूण्र रूप से बना दिया, तब तालाब का नाम भी अमृतसर हुआ, पश्चात् उसी की ख्याति से नगर का नाम भी अमृतसर हो गया। इसलिए इन शब्दों में अमृतसर अथवा रामदास सरोवर, अमृतसर के तालाब का ही वाचक है। किसी अन्य अर्थ का नहीं।

आगे कुछ वह शब्द लिखता हूं। जो अन्य तीर्थों का वर्णन करते हैं:—

1. मारगि पंथ चले गुर सति गुर संग सिखा।
अनदिन भगत वणी खिन खिन निमप विखा।
हरि हरि भगत वणी प्रभ केरी सभ लोक वेखण आइआ।
जिन दरसु सतिगुर गुरु कीआ तिन आप हरि मलाइआ।
तीरथ उदम सतिगुरु कीआ सभ लोक उधरण अरथा।
मारगि पंथ चले गुरु सतिगुरु संग सिखा।। 2।।

प्रथम आये कुल खेत गुर सतिगर पुरव होआ। खबर भई संसार आए त्रैलोआ। देखणि आए तीन लोक सुर नर मुनि जन सभ आइआ। जिन परसिआ गुर सति गुरु पूरा तिनके किलविष नास गवाइआ। जोगी दिगबर संन्यासी षट दरसन कर गए गोसटि ढोआ। प्रथम आए कुल खेत गुरु सतिगुर पुरब होआ।। 3।।

दुतीआ जमुन गए गुर हरिहरि जपन कीआ। जागाती मिले दे भेट

गुर पिछे लंघाइ दिआ। सभ छुटी सतिगुरु पिछै जिन हरि हरि नाम धिआइआ। गुरु वचन मारग जो पंथ चाहते तिन जम जामाती नेड़िन आइआ। सभ गुरु गुरु जगत बोले गुर क नाइ लइऐ सभ छुटक गइआ। दुतीआ जमुन गए गुर हरि हरि जपुन कीआ।। 4।।

त्रितीया आए सुरसरी तह कउ तक चलत भइआ। सभ मोही देखि दरसुन गुर संत किने आढु न दाम लइआ। आढु दाम किछु पइअन बोलक जागातीआ मोहण मंद पई। भाई हम करहि क्या किस पास मांगहि सभ भाग सतिगुर पिडै पई। जागातीआ उपाव सिआणप कर वीचार डिठा भंन बोलकां सभ उठ गइआ। त्रितीआ आए सुरसरि तहि कऊ तक चलत भइआ।। 5।। —तुखारी छन्त महला 4 छन्द 10

अजै गंग जलु अटल सिख संगति सभ नावै।

—सवैये महला 5। 20।

इनमें प्रथम शब्द में गुरु अमरदास जी की तीर्थ यात्रा का वर्णन है, कुरुक्षेत्र, यमुना, गगा तीन स्थानों को उल्लेख है। दूसरे में गंगा का वर्णन है। यह शब्द तीर्थ का वर्णन वैसे ही करते हैं, जैसे पौराणिक सम्प्रदाय वाले कहते हैं।

इनके अतिरिक्त पं. तारासिंह जी ने एक पुस्तक श्री गुरुतीर्थ संग्रह' नाम की लिखी है। उसमें दसों गुरुवों के नाम पर जो गुरुद्वारे हैं उनका वर्णन है, उन गुरुद्वारों में रखी हुई कछ वस्तुओं का भी उल्लेख है। उन्होंने कहीं—कहीं ऐसे पाठ भी लिखे हैं जैसे अन्य स्थानों वाले प्रचार करके भ्रमोत्पनन करते रहते हैं यथा "जहां गुरु का जन्म है वहां काक फल पुत्र पैदा होगा, जहां गुरु जी का विवाह हुया वहां का फल विवाह, वाउली साहब में स्नान करने से चौरासी लाख योनियों का चक्र काटा जाता है, आदि।" यह बातें गुरु जी के पिछले सिद्धान्त के विरुद्ध प्रतीत होती हैं।

उन्होंने जो पुस्तक का नाम 'तीर्थसंग्रह' रख, यह भी भ्रमोत्पादक है। यदि वह कोई अन्य नाम रखते, तो उत्तम होता। क्योंकि तीर्थ शब्द पर जो लोगों की भावना है, वह अज्ञान जन्य है। वह या तो अपना पारिभाषिक अर्थ लिखते वा नाम और रखते। जैसा ऋिशि दयानन्द जी ने तीर्थ शब्द का यौगिक अर्थ लिखा है।

— + —

18.

मद्य—मांस

वैदिक सिद्धान्त में मद्य—मांस को विवजित माना जाता है। ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में अनेक स्थानों पर कहीं एक का कहीं दोनों का नाम लेरक निषेध किया है। आगे सत्यार्थ प्रकाश के पाठ लिखता हूं। पृष्ठ आवृत्ति 27 के हैं—

1. माता ओर पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य ओर पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य को छोड़ के। पृ. 14

2. मद्य, मांसादि के सेवन से अलग रहें। पृ. 19

3. ब्रह्मचारी, और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस....आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें। पृष्ठ 29

4. जो मादक और हिंसाकारक द्रवें को छोड़ के भोजन करने हारे हैं, वे हविर्भुज। पृष्ठ 61

5. जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। पृ. 74

6. मद्य मांसादि वर्जित होकर। पृ. 80

7. जो लोग मांस भक्षण और मद्य पान करते हैं, उनके शरीर ओर वीर्यादि धतु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिए उनके संग करने से आर्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें, यह तो ठीक है। परन्तु जब इनसे व्यवहार और गण ग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं हे,किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें, तो कुछ भी हानि नहीं। पृष्ठ 165

8. वर्जयेत्मधू मांसं च। मनु. 2। 177

अनेक प्रकार के मद्य, गांझा, भंग, अफीम आदि छोड़ दे। पृ. 167

9. जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में वैर विरोध हुआ, उन्हीं ने मद्यपान, गोमांसादि का खाना—पीना स्वीकार किया, उसी समय से भोजन आदि में बखेड़ा हो गया। पृष्ठ 169

10. जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब

आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है, इससे देश में विद्या, सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य, मांस सेवन, वाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। पृष्ठ 173

11. मांस भक्षण करेन, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदि में दोष नहीं है, यह कहना छोकड़ापन है। क्योंकि बिना प्राणियों के पीड़ा दिये मास प्राप्त नही ंहोता, और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं मद्यपान का तो सर्वथा निषेध है क्योंकि अब तक वाममार्गियों के बिना किसी अन्य ने नहीं लिखा, किन्तु सर्वत्र निषेध है। पृ. 179

12. यज्ञ में मांस खने में दोष नहीं, ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई।पृ. 179

13. दुश्ट पुजारियों को धन देते हैं, वे उस धन को , वेश्या, परस्त्रीगमर, मद्य, मांसाहार, लड़ाई, बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिसमें दाता के सुख का मल नष्ट होकर दुःख होता है। पृष्ठ 199

14. जो मांस खना है। यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है। इसलिए उनको राक्षस कहना उचित है, परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा। पृष्ठ 259

15. मद्य पान, मांस खने ओर परस्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कर्मों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलंक लगाया। पृष्ठ 259

16. जिसको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे। वह बिना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी नहीं हो सकता। पृष्ठ 306

17. देखिये। पिता पुत्री भी जिस मद्यपान क ेनशे में कुकर्म करेन न बच सके, से दुष्ट मद्य कोजो ईसाई आदि पीते हैं, उनकी बुराई का व वारापार है? इसलिये सज्जन लोगों ाके मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये। पृष्ठ 206

18. मांसाहारिणः कुतो दया।

मांसाहारी के दया कहां, जब ईसइयों का इश्वर मांसाहारी है, तो उसको दया करने से क्या काम? पृष्ठ 311

19. इसी से वह अहिंसक और ईश्वर कोटि में गिना कभी नही ंजा सकता। किन्तु मांसाहारी प्रपंची मनुष्य के सदृश है। पृष्ठ 313

20. जो वह क्षमा और दया करने वाला है, तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर, मरवाके मांस खाने की आज्ञा क्यों दी। पृष्ठ 337

मद्य मांस के विरुद्ध यह बीस पाठ सत्यार्थ प्रकाश से लिखे हैं। जिसने अधिक देखने काहं, वह स्वयं सत्यार्थ प्रकाश का पाठ करके देखने का कष्ट करें।

आगे श्री गुरुग्रंथ जी के शब्द लिखता हूं। इनमें प्रथम पद्य विषयक लिखकर फिर मांस विषयक लिखूंगा :–

1. सचु सुरा गुड़ वाहरा जिस विच साचा नाउ।
सुणहि बखाणै जेतड़े हउ तिन बलिहारे जाउ।
ता मन खीवा जाणीऐ जा महली पावे थाउ। 2।

–स्त्री राग महला 1 शब्द 5

2. माणसु भरिआ आणिआ माणसु भरिआ आइ।
जितु पीते मति दूर होई वरल पवै विच आइ।
आपणा पराइआ न पछाणई खसमहु धके खाइ।
झूठा मदु भूल न पीचइ जे का पार बसाइ।
नानक नदरी सचु मदु पाइऐ मतगुरु मिलैं जिस आइ।
सदा साहिब के रंग रहै महली पावै थाइ।

–विहागड़ा वार महला 4। सलोक महला 3 वार 16।

3. सच सचा जिनी न सेविआ से मनसुख मूड़ वेताले।
आह आलु पतालु मुहहु बोलदे जिउ पीते मद मतवाले।

–राग गोड़ी वार महला 4 वार 19

4. दुरमति मदु जो पीवते बिखलीपति कमली।
राम रसाइणिजो रते नान सच अमली।

–राग आसा महला 5 श.114

5. कबीर भांग माछली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि।
तीरथ वरत नेम कीए सभै रसातल जांहि।

–कबीर सलोक 233

भाई कान्हसिंह जी ने गुरमति प्रभाकर के पृष्ठ 467 पर लिखा है– ''गुरमत विच बुधि विनाशक नशे, जिन्हां करके पराधीनता, आलस,

रोग और अनेक प्रकार दे विकार उपजदेहन, निषेध कीते गए हन।''

1. जे रतु लगे कपड़े जामा होइ पलीत।
जे रतु पीवहि माणसा तिन क्यों निरमल चीत।
नानक नाउ खुदाइ का दिल हछे मुख लेहु।
अवरदिवाजे दुनी के झूठे अमल करेहु।

—माझ की वार महला 1 वार 6

2. तउ नानक सरब जीा मिहरंमत होइत मुसलमान कहावै।

—राग माझ वार महला 1 वार 8

3. मारण पाहि हराम महि होइ हलालन जाइ।

—माझा वार महला 1 वार 7

4. सच ता पर जाणीऐ जा सिख सचि लेइ।
दइआ जाणै जोअ की किछु पुन्न दान करेइ।

—आसा वार महला 1 वार 10

5. माणस खणैह करहि निवांज। छुरी वगाइन तिन गल ताग।
तिन घर ब्राह्मण पूरहि नाद। उन्हां भी आवहि ओई साद।
कूड़ी रासि कूड़ा वापार। कूड़ बोल करहि आहार।
सरम धरम का डेरा दूर। नानक कूड़ रहिआ भरपूर।
मथे टिका तेड़ धोती कखाई। हथ छुरी जगत कासाई।
नील वसत्र पहरि होवहि परवाण। म्लेछ धान लै पूजहि पुराण।
अभाखिआ का कुठा वकरा खाणा। चउके उपरि किसे न।
जाणा। दे चउका कढ़ी कार। उपरि आई बैठे कूड़िआर।
मत मिटै वे मतभिटे। एह अनन असाड़ा फिटै।
तनि फिटै फेड करेनि। मन जूठे चुले भरेनि।
कहु नानक सच धिआइऐ। सुचि होवे ता सच पाइऐ।

—राग आसा वार महला 1 वार 16

6. एकादसी इक रिदे वसावै। हिंसा ममता मोहू चुकावै।
फल पावै व्रत आतम चीने। पाखंड राच ततु नह चीने।

—राग विलावल तिथि महला 1 शब्द 13

7. कादी कुड़ बोल मलु खाइ। ब्राह्मण नावै जीआ घाइ।
जोगी जुगतिन जाणै अन्ध। तीनों उजाड़े का वन्ध।

—राग धनासरी महला 1 शब्द 7

8. वगा वगे कपड़े तीरथ मझ वसन।
घुटि घुटि जींआ खावणे वगे न कहीअन।

—राग सूही महला 1 शब्द 3

9. कुदमु करे पसु पंखीआं दिसे नाहि काल।

—स्त्रीराग महला 5 शब्द 73

10. वेद पड़ै मुख मीठी वाणी। जीआ कुहत न संगै प्राणी।
कहू नानलक जिस किरपा धरे। हिरदा सुध ब्रह्म वीचारे।

—राग गौड़ी महला 5 शब्द 107

11. मन संतोष सरव जीअ दइआ। इस विध व्रत संपूर्ण भइआ।

—राग गौड़ी थिति महला 5 शब्द 11

12. दुख न देई किये जीअ पति सेती घर जावउ।

—राग गौड़ी वार महला 5 वार 17

13. रोजा धरे मनावै अलहु सुआदिति जीअ संघारै।
आप देख अपर नहीं देखै काहे कउ झख मारै।1।
काजी साहिब एक तोही, महि तेरा सोच विचार न देखै।
खबर न परहि दीन के बउरे ताते जनम अलेखै।

—आसा कबीर जी शब्द 29

14. जीअ वधहु सुधरम कर थापहु अधरम कहहु कत भाई।
आप साकउ मुनि वर कर थापहु का कउ कहहु कसाई।

—राग मारू कबीर जी शब्द 1

15. जउ सब महि एक खुदाइ कहत हड तउ क्यों मुरगी मारै।

—राग प्रभाती कबीर जी शब्द 4

16. कबीर जीअ जु मारहि जोर कर कहते हहि जुहलाल।
दफतर दई जब काढ है होइगा कउन हवाल।

—कबीर जी सलोक 199

17. कबीर जोर की सो जुलम हैं लेइ जवाब खुदाइ।
दफतर लेख नीकसै मार मुहे मुहि खाइ।

—कबीर जी सलोक 200

18. तीरथ देख न जल महि पैसउ जीअ जंत न सतावउ गो।

—रामकली नामदेव शब्द 2

19. सिमरन भजन दइआ नहि कीनी तउ मुख चोआ खाहिगा।

—रगा मारू जैवदेव ज शब्द 1

20 हिंसा तउ मनते नहीं छूटी जीअ दइआ नहीं पाली।

—सारंग परमानन्द जी

21. अठ सठ तीरथ सगल पुन जीअ दइआ परवाण।

—राग माझा महला 5 शब्द 12

22. कुदमु करे गाडर जिउ छेल। अचिंत जाल काल चक्र पेल।

—राग रामकली महला 5 शब्द 52

23. खसम पछानि तरस नहि जीअ महि मार मणीकर फीकी।
आप जनाइ अवर कउ जानै तब होइ भिसत सरीकी।।

—आसा कबीर जी शब्द 17

24. कबीरा राती होवहि कारीा कारे उभे जन्त।
लै फाहे उठ धावदे सि जानि मारे भगवन्त।

—कबीर सलोक 10

25. अलप अहार सुपलसी निंद्रा दा क्षमा तन प्रीत।

—रामकली पातशाही 10 शब्द 1

26. मजन तेग वर खूंन कस वेदरेग।
तुरा नीज खुंनसत वा चरख तेग।

—जफर नामा पातशही 10 छन्त 69

किसी की गरदन पर वेदरेग होकर तेग न चला। तेरी गरदन भी आशी तेग से काटी जायगी।

27. सींह पजूती (पकड़ी) बकरी मरदी होई खिड़खिड़ हंस्सी।
सींह पुछै विसमाद (आश्चर्य) हुइ इत अउसर कि रहसर हंस्सी।
विनहु करेंदी बकरी पुत्र असाडे कीचन खस्सी।
अक धतूरा खाधिआं कुहि कुहि खल उखल (उधेड़कर)
विणस्सी मास स्वाण गल बढ़क हाल तिनाड़ा कउण होवस्सी।
गरब गरीबी देह खेह खाज अखाजा अकाज करस्सी।
जग आइआ सभ कोई मरसी।

—वारा भाई गुरदास वार 25 पौड़ी 17

28. कुहे कसाई बकरी लाइ लूण सीख मास परोआ।
हस हस बोले कुही दी खाधे अवक हाल एह होआ।
मास खाण गल छुरी दे हाल तिनाड़ा कौण अलोआ।

—भाई गुरदास दीआं वारा वार 37 पौड़ी 21

29. जेकर उधरी पूतना विहु पीआलन कम न चंगा।
गनिका उधरी आखऐ पर घर जाइ न लइऐ पंगा।
वालमीक निसतारिआ मारे वाट न होइ निसंगा।
वधक उधरे आखीअन फाही पाइ न फडीऐ टंगा।
जे कसाई उधरिआ जीआ धाइ न खइऐ भंगा।
पार उतारे वोहिया सोइना लोह नहीं इक रंगा।
इत भरवासे रहण कुढंगा।

—भाई गुरदास दीआं वारां वार 31 पौड़ी 9

यह सब पाठ मद्य, मांस निषेध वाचक है।

आगे वह शब्द लिखूंगा, जो मांस के पक्ष में कह जाते हैं, प्रायः एक शब्द अधिक प्रसिद्ध है, उस पर विशेष विचार किया जायगा।

1. क्या खाध`क्या पेधे होइ। या मन नांही साचा सोइ।
क्या मैदा क्या धिउ गुड़ मिठा क्या मैदा क्या मास।

—माझ वार महला 1 वार 10

इस शब्द में ईश्वरभगति पर बल है, और मांस खाने का कोई विधान नहीं है।

2. इक मास हारी इक त्रिणखाहि।

—माझ वार महला 1 वार 14

इसमें सिंहादि मांसाहारी है, अजादि तृण खाने वाले हैं। खाने का विधान इसमें भी नहीं है। इस शब्द का आरम्भ ही 'सीहां वाज' से है।

3. जीआ का आहारु जी खाणा एहु करेइ।

—रामकली वार महला 3 वार 18

इस शब्द में ईश्वर के दातापन का वर्णन है। यथा—
नानक चिंता मत करहु चिंता तिसही होइ।
जल महि जंत उपाइअन तिना भी रोजी देइ।
ओथे हटु न चलई ना को किरस करेइ।

उदा मूल न होवई ना को लिए न देइ।
जीआ का आहार जीअ खाणा एह करेइ।
विच उपाए साइरा तिना भी सार करेइ।
नानक चिंता मत मरहु चिंता तिस ही होइ।

इस सारे पाठ को मिलाकर पढ़ने से ईश्वर के दाता होने का बोध होता है। मांस खाने का विधान किसी प्रकार भी नहीं।

आगे वह शब्द लिखता हूं जिस पर विवाद है।

सलोक म. 1. पहिला मासहु निंमिआ मासे अन्दरि वास।
जीउ पाइ मास मुहि मिलिआ हड़ मच तन मास।
मासहु आहर कढिया मम्मा मास गिरास।
मुहु मासै का जीभ मासे की मासै अन्दरि सास।
बड़ा होआ बीआहिआ घर लै आइआ मास।
मासहु ही मास ऊपजे मासहु सभो साक। 1।

महला 1 मसु मासु कर मूरख झगड़े अिान धिआन नहीं जाणै।
कउण मास कउण साग कहावे किस महिपाप समाणै।
गैंडा मार होम जग किए देवतिआं की वाणै।
मास छोड़ वैसि नक पकडहि राती माणस खाणे।
फड़ करि लोकां नो दिखलावहि गिआन नहीं बूझै।
नानक अंधे सिउं क्या कहीऐ कहै न कहिआ बूझै।
अन्धा सोइ जि अन्ध कमावे तिस रिदे सिलोचन नाहीं।
मात पिता की रकु निपन्ने मछी मास न खांही।
इसत्री पुरुषै जानिस मेला औथे मु कमाही।
मासहु निमे मासहु जम्मे हम मासे के भांडे।
गिआन विआन कछु सूझे नाही चतुर कहावे पांडे।
बारह का मास मन्दा सुआमी घर का मास चंगेरा।
जीअ जंत सभ मासहु होए जीइ लइआ बसेरा।
अभखु भखहि भखु तजि छोड़हि अंध गुरु जिन केरा।
मासहु निम्मे मासहु जम्मे हम मासै के भांड़े।
गिआन धिआन कछु सूझे नारहीं चतुर कहावे पांडे।
मासु पुराणी मासु कतेवी चहु जुगि मास कमाणा।

जजि काज वीआहि सुहावै ओथे मास समाणा।
इसत्री पुरुष निपजहि मासहु पातसाह सुलताना।
जे आई दिसहि नरक जांदे तां उनका दान न लैणा।
देंदा नरकि सुरगि लैदे देखहु एह धिड़ाणा।
आप न बूझे लोक बुणए पांडे खरे सिआणा।
पांडे तू जाणे ही नाहीं किथहु मास उपन्ना।
तोइहु अन्न कमाद कपाहा होइअहु त्रिभवन गन्ना।
तोआ आखै हउ बहु विधि हछ तोए बहुत विकारा।
एते रस छोड़ होवै संनिआसी नानक कहै विचारा। 2।

—मलार वार महला 1 वर 25

इस शब्द में मांस शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है, शरीर मांस है, मांस में ही शरी की उत्पत्ति हुई। उत्पन्न होते ही स्तन जिससे दूध मिला मांस था। विवाह होने पर पति—पत्नी मांस के हैं, आदि पुनः प्रश्न है। —पंडित जानता नहीं, क्या मांस है ओर क्या शक है। अन्त में पुनः प्रश्न है—मांस कहां से उत्पन्न हुाअ। जिसका उत्तर दिया है—सब कुछ जल से ही होता है। इस सारे शब्द में मांस खाने का कही भी वर्णन नहीं है। इसलिए यह शब्द मांस खने का पोषक कदाचित् भी नहीं है।

इस शब्द की उत्थानिका यह है। गुरु नाक देव जी कुरुक्षेत्र सूग्र ग्रहण पर गए हुए थे, वहां उन्होंने मांस पकाना आरम्भ किया, पंडितों ने आक्षेप किया, उस समय गुरुजी ने यह शब्द पढ़ा।

इस शब्द पर श्री निधानसिंह जी आलिम, जो नामधारी दरबार के प्रधन है।, उन्होंने विस्तार पूर्वक वियार किया है, उन्होंने जो इस विषय पर पुस्तक लिखी है, उका नाम 'सिख धर्म ते मास है' मैं उनका पाठ ही लिखता हू। पाठक ध्यानपूर्वक पढ़कर निश्चय करें कि यह शब्दमांस का पोषक है वा नहीं।

'कुरुक्षेत्र विषे सूरज ग्रहण दे समें श्री गुरु नानकदेव जी दे मास रिनण (पकाने) दा प्रसंग मासाहारी आं दी तकडत्री (विशेष) ओट वणिआ होइआ है। परन्तु इस द्वारा गुरु जी दा सामस खाण या प्रचार करना किसे तरां भी सिध नहीं हुन्दा। एस प्रसंग नूं सिख इतिहास दे लेखकां ने जिस तरां लिखिआं हे, पहले वाकफी वास्ते एथे अंकित करके उपरंत (पश्चात्)

उसदा विचार पाठकां दी भेटा कीता जाऊगा?'' पृष्ठ 40

आगे आलिम जी इतिहासकारो का मत बतलात हैं, उसका सार इस प्रकार है। जन्म साखी भाई वाला पृष्ठ 327–328।

पटने दे राजे दा पुत्र दुश्मनां द भजाइआ होइआ आइआ, उसने मृग दा ामस दित्ता। गुरु जी ने वाले नूं कहके रिनणा धरिआ। लोकां ते संनिआसिआ ने आके पछिआ, की है? गुरु ज ने कहआ ास है, सवाल करेन ते राग मलार वाला शब्द कहिआ। लोकां ते संनिआसिआ ने आके पुछिआ, की है? गुरु जी ने कहिआ मास है, सवाल करने ते राम मलार वाला शब्द कहिआ। सब चुप हो गए। पिछों गुरु जी ने उसे देगचों तसमई (दूध पाक) कढ़ के उसे राजकुमार दे हथीं षट् दरसन नूं बरताई।

गुरु जी ने बाले नूं भेज के मच्छी मगवाई, ते रिनणी धरी। पता लगण ते नानूं पंडित संनिआसीआ सतेत आके झगड़न लागिआ। जद ओह हारके चुप हो गए, तां गुरु जी ने कहिआ, कु नी (हांडी) भन सुट। जद बाल ने कुनी भन्नी, तां विचो कुझ भी न निकलिा ओह बड़े हैरान होए।

नानक प्रकाश में लिखआ है–

'गुरु नानकदेव जी दे चित विच चरचा करन दी इच्छा होई, ओंदें नूं इक राजकुमार ने इक मृग मार के भेटा कीता। गुरु जी ने रिनणा ध ारदित्ता, पंडितां दे पूछण नाल मलार दा शब्द कहके समाधान कीता, ओह चुह हा गये, फेर औन्हांने कहिआ, परव दे समें मरयादा रखनी चांहींदी है, तां गुरु जी ने कहिआ, गऊआं दा दुध मंग वाके खीर चाढ़ी है, सभ नूं राजकुमार दे हथीं खीर खवाई।

तवारीख गुरु खालसा विच राजकुमार दे थां हांसी वाले अग्रितराय दा पुत जगतराय लिखिआ है, और गला पहले वरगीआ ही हन।

श्री गुरु नानक प्रबोध विच वकरा मारके रिनणा लिखिआ है। पंडित दा ओणा ते विचार करना पहले वरगा ही है।

इनमें कई विचरर करते समय आलिम जी लिखते हैं।

'पहिलां ता एस लेखक ही इकमत नहीं हन, जते पता लगदा है एह गल असल विच कुछ नहीं। जे कुछ हुंदी,तां लिखण वालिआं विच ऐना फरक न हुन्दा। जे कुद होई ही, तां एहो ही है, लोकां नूं सम गौण वासते इक ढंग वणाइआ सी, एसे करके अन्त नूं खीर दिखाई त तसमई ही खवाई

हैं एस कहाणी विच किते वी गुरु जी दा मास खाणा जां खवौणा नहीं लिखिआ, एस करके एह शब्द मास खाण दी आगिआ नहीं दिंदा।

जे कोई मासाहारी सज्जण जे वी हठ करी जाए, कि एन्दा सलोकां तो मास खाणा ही विशेष सिध है, तां ओस जूं एस ल बल धिआन देध चाहीदा है, कि एन्हां सलोका विच केहड़े मास दा सिकी तरींके नाल खाणा लिखिआ होइआ है क्योंकि एथे गुरु जी ने माता, पिता, भेण, भरा, इसत्री, पुरुष सभनां नूं मास रुप विच ही वर्णन कीता है। मूंह, जीभ हड, चम ते थण (स्तन) आदि सभ समग्री मास दी है, जिसनूं कुदरत दे नेम अनुसार सभ लोक किसे नल किसे तरां वरत रहे हन, परन्तु मासाहारी पुरुषां दे झटके या हलाल दे तरीकिआं नाल इस मास दी बरतों तां असभ्य श्रेणी दे मनुष्या भी नहीं करदे। माता दे थणा दुआरा दुध पीके तां मनुष दी सन्तान अज तक पलदी रही हें ते अग नूं पलदी रहेगी, पर जे मांसाहारी सिखां दे तरीके नाल मावां दे थण कुतर के ओन्हों दा महाप्रसाद वणा वचिओ नूं छकौण (खिलाने) का प्रोगराम वणइआ जावे तां मावां ते बच्चे दोहा दे ही जीवन दा की हशर (परिणाम) होवेगा? ऐसे तरां इसत्री दे पति गृहसत दी मरयादा अनुसार जीवन सन्तान दे पैदा करन द रूप विच परसपर निरवाह करदे, हन, पर जे ओह टोके कुहाड़िआं लैके महाप्रसाद (मांस) वणन लई इक दूजे दे हुआले होणा शुरू कर देण, तां एह राडे किनाकुचिर लगणगे। ते मनुष दी नसल दा कीरतन सोहिला (अन्तिम पाठ) पढ़ना विच किनां कू समा दरकार होवेगा? एसे करके गुरु जी कह हन, कि हे मूरख! मास मास करके पिआ झगड़दा है, पर गिआन धिआन द्वारा एह समझण दी कोशिश नहीं करदा, कि मास केहड़ा है, ते साग कौण है? अते किसदे वरतण विच पाप है? एह प्रश्न बड़े महत्व दे हन, क्योंकि गुरु जी, मा, पिउ, इसत्री, पुत्र, राजा, प्रजा, सभनां नूं मास रूप ही कर रहे हन। भावे सभदा मास इको है, ते सभ इके ही वणत देवणे होए, हन, परवरतो दा विहार (व्यवहार) सभ दा वखोवखरा है। जिस तरां इके इसत्री नूं पति इसत्री भाव नाल तक रिहा है, पुत्र मातीााव नाल सतका रिहा है, भरा भेण दी दृष्टि माल तक रिहा है, अते पिता पुत्री ी नजर नाल वेख रिहा है। जे मासाहारी दी दरिसटी नाल देखिआ जावे, तां इको ही है, पर विवहार विच फरक क्यों पैगिआ है। ''मास मास कर मूरख झगड़े गिआन धिआन नहीं जाणे। कउण मास कउण साग

कहावे किस महि पाप समाणे' दी उलझन वी एथे ही सुलझेगी, जिसनूं मासाहारी पुरुष अज तक नहीं सुलझा सहिआ। गुरु जी एथे सारी अहारते मासाहार नूं सामणे रख दआि होइआं पूछ कीती है, कि माता, पुत्र, भेण, भाई, लड़ी हैन तां सभ मास दे भांडे, पर एन्हां विचों मास केहड़ा है, ते साग केहड़ा है? ते किस दे तरा खाण वरतण विच पाप हुन्दा है। सो आपणी इसत्री नाल इसत्री वाला विवहार करना साग (यानी उत्त्मा विहार) है, परे लड़की, भैण तथा माता नूं इसत्री दी द्रिशटी नाल वेखणा मास (अर्थात् अनुचित विवहार) है, जिस विच पाप है।

एस विचार अनुसार एन्हां सलोका विच अगत प्रसिघ मास दा खाण इष्ट नही, सगों मास रूप संसार विच आपणी आपणो अधिकार अनुसार बरतें करनी प्रयोजन हैं तांते गुरवाणी अते इतिहास दे चानणे (प्रकाश) हेठ श्री गुरु नानक देव दे मास सम्बन्धी मत बावत जरा भी हनेरा अन्धकार नही रह जांदा। जद आप मास खाणा वालियां दे घर दा भोजन तक ग्रहण नहीं करदे अर देवलत जैसे मांसाहारी राखसां राक्षसों तो मास छुडौण थी बिन उन्हां नूं उपदेश नही करदे, अते मे मदीने विचा, जिथे कि आपदे इरद गिरद मासाआहारीआं दे ही मजमे सन मास बावत निरभै होके आपणा एही मत प्रगट करदे हन, कि मास खाण पाप है, तां कुरुक्षेत्र विच ब्राह्मण नूं मास खाण दा उपदेश किवें कर सकदे हन? तांते मलार दे सलाक दा तातपरय केवल नानूं जैसे पंडित दे पांडित्य दा अभिमान दूर करना अते उन्हां लोका नूं सिधे रसते पौणासी। पृष्ठ 421—46

इस प्रकार श्री निधान सिंह जी आमि ने इस शब्द पर विचारी किया है। उनका निर्णय यही है, कि रागमलार का यह शब्द मांस भक्षण की आज्ञा नहीं देता है। प्रत्युत मांस भक्षण का निषेध करता है। यही पक्ष ग्रह्य है।

— + —

19.

नमस्कार

आर्य समाजी परस्पर मिलते समय नमस्ते शब्द का प्रयोग करते है। रात को सोते समय, प्रातःकाल उठते समय, अन्य मिलन समय परस्पर इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में लिखा है। ''दिन रात मे जब जब प्रथम मिलें वा पृथक हों, तब तब प्रीति पूर्वक 'नमस्ते' एक दूसरे से करें।

यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में नमस्कार का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अनेकों को कहा गया है, वेदिक साहित्य में इसका प्रयोग मिलता है। इसलिये यह शब्द आर्य संस्कृति में प्राचीनकाल से है।

सामान्य रूप से इस शब्द के अर्थ, सतकर करना, झुकना आदिहे। और आशीर्वाद भी है।

सिख पंथ मे इसका प्रयोग इस समय नहीं है, किन्तु आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी जथा दसम गुरुग्रन्थ साहिब में इसका प्रयोग है। मैं उन शब्दों में से कुछ शब्द लिखता हूं—

इसके तीन भाग करता हूं। प्रथम ईश्वर को नमस्कार, दसूरे गुरु को नमस्कार, तीरसे अन्य मनुष्यों को नमस्कार।

1. क. आदि गुरए नमः। जुगादि गुरए नमः।
—सुखमनि महला 5 सलोक 1

ख. तुमरी कृपा ते गुन गावै नामधिआइ धिआइ प्रभकउ नमसकारे।
—राग आसा महला 5 श. 36

घ. गरभ घोर मह रखन हार। तिस ठाकर कउ सदा नमसकार।
—राग गौंड महला 5 शब्द 5

ड. हरए नमरते हरए नमः। हरि हरि करत नहीं दुःख जमः
—गौंड नामदेव शब्द 5

2. क. सतगुरए नमः। गुरदेवए नमः।
—गौड़ी सुखमनि महला 5 सलोक 1

ख. तिस गुर कउ सभ नमसकार करहु जिन हरि की हरि गाल गलोईऐ। —राग बडहंस वार महला 4 वार 4

ग. हउ सतगुर आपणे कउ सदा नमसकारी जिति मिलीए हरनाम मैं जाता। —राग वउहंस वार महला 4 वार 16

घ. सदा सदा तिस गुरु कउ करी नमसकार।

—गौडी महला 5 अष्टपदिआं अष्ट. 9

ड. गुरु के चरन नमसकार। भव जन उतरहि पार।

—रामकली महला 5 शब्द 40

3. क. नाम जपे नाम अराध तिस जन कउ करहु सभ नमसकार।

—रागकली वार महला 3 वार 9

ख. जिस अंतर हिरदा सुध हे तिस जन कउ करि नमसकारी।

—बडहंस वार महला 3 वार 2

ग. जाके हिरदे बसिआ मेरा हरि हरि तिस जन कउ करहु नमसकार।

—राग वैराडी महला 4 शब्द 5

घ. इक गुर प्रसादी उवरे तिस जन कउ करहि सभ नमसकार।

—सारंग वार महला 4 वार 28

ड. हरि के दास के चरण नमसकारहु।

—गौडी महला 5 शब्द 126

च. सफल ओह माथ सन्त नमस्कारसि।

—गौडी महला 5 शब्द 129

छ. सन्त पिआरे कारज सारे नमसकार करि लगे सेवा।

—आसा छन्त महला 5 छन्त 1

ज. पतित पवित्र लीए कर अपने सगल करत नमसकारो।

—गुजरी महला 5 शब्द 10

इनमं प्रायः नमस्कार शब्द आया है। अतः सिख विद्वान् इस का अर्थ क्या करते हैं, यह लिखना आवश्यक है।

नमो— दे. नमसकार, यथ—हरि संतन कर नमो नमो।

नमसकार—सं. प्रणाम, मथा टेकण, यथा कर नमसकार पूरे

गुरदेव—गुर गिरा रथ कोष। पंडित तारासिंह जी

नमसकार— सं. संग्या, नमस्कार, प्रणम, बंदना नमसकार डंडउत

वंदना।

नमो—नमस्कार हरि संतन करि नमो नमो।

—गउ. अ. महला 5

गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष। भाई कान्हसिंघ जी।

आगे दसम ग्रन्थ जी के पाठ लिखता हूं—

1. नसमतं अजाते। नमसतं अपाते।
नमसतं अजाते। नमसतसत अजवे। —जपुजी 17

2. नमो सरव काले। नमों सरब दिआले।
नमो सरव रूपे। नमो सरव भूपे। —जपुजी 19

3. घर घर प्रणाम चित चरन नाम। —जपुजी 168

4. प्रणवो आदि एकं कारा। जल थल महिअल कीओ पसारा।

—अकाल उसतत छन्द 1

इन सब पाठों से सिद्ध है कि गुरु घर में प्रथ नमस्कार शब्द का प्रयोग था।

— + —

20.

स्त्री–जाति

आर्य समाज के प्रचार से पूर्व स्त्रियों को शूद्र के समान अथात् सबको शुद्रा माना जाता था। इनको पढ़ऋने का भी अधिकार न था पढ़ने का अधिकार ऋषि दयानन्द जी ने दिया।

सिख पंथ में प्रथम स्त्रियों को चरण घाल दी जाती थी खड़े ी दीक्षा र्था खंडे की पाहुल का अधिकार न था अब वह प्रथा भी बन्द होकर स्त्रियों को भी खंडे का अमृत ही छकाया जाता है। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है–

प्रश्न– क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़े? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है। जैस यह निषेध है–

स्त्री शूदौ नाधीयातामिति श्रुतेः।

स्त्री और शूद्र न पढ़े, यह श्रुति है।

–मीमांसा न्याय प्रकाश पृष्ठ 196

उत्तर– सब स्त्री और पुरुष अर्थात्! मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है और तुम कुआ में पड़े, और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यो के वेदादि शास्त्र पढने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मंत्र है।

–सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 3 पृष्ठ 43, 44

पितृभिर्भ्रातृभिश्चेताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वासतत्राफलाः क्रियाः।।
शेचन्ति जाभयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैताः वर्धते तद्धि सवंदा।।
तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेपूत्सवेषु च।

–मनु. अ. 3 श्लोक 55–57। 59

पिता, भाई, पति और देवर इनको सत्कार पूर्वक भूषणदि से प्रसन्न रखें, जिनको बहुत कल्याण की इच्छा हो, वे ऐसे करें।

जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, उसमें विद्या–युक्त पुरुष हाके देव संज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं ओरजिस घर मेंसित्रयो का सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल हो जाती है। जिस घर वा कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती है। वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्री–लोग आनन्द से उत्साद ओर प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है।

इसलिये ऐश्वर्य की कामना करने हारे मनुष्यों को योग्य है, कि सत्कार और उत्सव के समयों में भूषण, वस्त्र और भोजनादि स स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें। –सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ 58

यह ध्यान रखना चाहिये, पूजा शब्द का भाव सत्कार करना है गृहस्थ में स्त्री पुरुष का व्यवहार कैसा हो–

सन्तुष्टो भायया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वे ध्रुवम्।।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्तते।।
स्त्रियांतु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेवी न रोचते।

–मनु. अ. 3 श्लोक 60–62

जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहां कलह होता है वहां दौर्भाग्य और दारिद्रय स्थिर होता है।

जो स्त्री पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती, तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता।

जिस स्त्री की प्रसन्नता में सब कुछ प्रसन्न होता उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है।

स्त्री का कर्तव्य

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।

—मनु. अ. 5 श्लोक 150

स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई युक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथ घर को शुद्धि रखे और व्यय मे अत्यन्त उदार न रहे, अर्थात् यथायोग्य खच्र करे और सब चीजें पवित्र ओर पाक इस प्राकर बनावे, जो औषधि रूप होकर शरीर व आत्मा में राग को न आने देवे, जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रखे, पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे, घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे। —सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ 58

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में श्री गुरु नानकदेव जी ने लिखा है, स्त्री की निन्दा नहीं करनी चाहिए। यथा—

भडि जंमीऐ भंडि निमिऐ भंडि मंगण वीआहु।
मंडहु होवे दोसती भंडहु चलौ राहु।
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधान।
सो क्यों मन्दा आखीऐ जितु जंमहि बंधान।
भंडह ही भंड ऊपजै भंडे वाझु न कोइ।
नानक भंडे बाहर एको सचाा सोइ।

—राग आसा वार महला 1 वार 19

इस शब्द में भंड पद के अर्थ स्त्री हैं।

आदि ग्रन्थ जी मे ंएक बात और भी है। पाठकों ने पढ़ा होगा। जब पाठ का पता लिखा जाता है तो वहां महला शब्द भी होता है। इसका भाव इस प्रकार है—

महला 1	गुरु नानकदेव जी
महला 2	गुरु अगददेव जी
महला 3	गुरु अमरदास जी
महला 4	गुरु रामदास जी
महला 5	गुरु अर्जुनदेव जी
महला 9	गुरु तेगबहादुर जी

अब प्रश्न होगा, कि गुरु महाराज जी के साथ महला शब्द का प्रयोग क्यों होता है। इसके लिये मैं पंडित तारासिंह जी का पाठ लिखना उचित समझता हूं—

महला। सं. शासत्री के कोषों में महला, महेला दोनों स्त्री के नाम हैं, गंगा को गग कहनेवत्। महला से महल बने है।, महेला से महेली बने हैं, आदि ग्रन्थ जी मों महल पहला, महल दूजा आदिक पाठों में इसत्री (स्त्री) भाव का कथन है, क्योंकि आदि ग्रन्थ जी मों सखी भाव का वर्णन है। सखी भाव की भावना से ही वाणी रचना करके गुरों ने अपने को महल लिखा है। —गुरु गिरार्थ कोष पृष्ठ 513

इस प्रकार जब गुरु जी ने अपने आपको स्त्री भाव में प्रगट किया है। तब स्त्री को निन्दनीय कैसे कहा जा सकता है।

— + —

21.

वेष

वेश से मेरा भाव यह है,जैसे कहा जाता है। अमुक प्रकार से बाल रखने चाहिये, अमुक प्रकार के वस्त्र पहनने चाहिये, यदि कोई उससे विपरीत करे तो उसे पतित समझा जाय।

वेष का कए कारण तो देशकाल है। किसी देश में कोई वेश है किसी में कोई है। यथा मद्रास प्रान्त में गले में वस्त्र न पहन कर बाजार जाना साधारण बात है, किन्तु पंजाब में इस प्रकार जाना ठीक नहीं माना जाता बंगाल में सिर पर कुछ न रखना ठीक है किन्तु दूसरे प्रान्तों में नहीं। अब तो अन्य प्रान्तों में भी ऐसी परिपाटी हो गई है।

इस प्रकार काल भेद से वेष में अन्तर हो जाता है। उत्तर भारत में शीतप्रधान काल मे जो वेष होता है। वह ग्रीष्मऋतु से भिन्न ही होता है। इसका निमित्त केवल काल ही है।

इसी प्रकार कई वेश मनुष्य अपनी रुचि से बनाता है। क्यों कि सबकी रुचि एक समान नहीं है। कोई पगड़ी बांधना ही अच्छा जानता है और कोई टोपी रखना पसन्द करता है। इस प्रकार के जो भेद वेष में हैं, उन पर आपत्ति करना ठीक नहीं है। क्योंकि जिस देश के जो अनुकूल है, वह उससे ही सुख में रहते हैं ओर जिसक ाल मे जिसकी आवश्यकता है वह भी रखना ही होगा। रुचि की प्रधानता तो सब पर है। किन्तु जहां इन वेषों में धर्म को मिलाया जाता है, अर्थात् इस प्रकार के वेष से धर्मात्ता हो जाता हे और उससे विपरीत होने से वह अधर्मात्मा हो जाता है। ह जो विवाद है यह ठीक नहीं है। यही निन्दनीय है। यह त्याज्य है। यथा–

एक तम है–काषाय रंग के वस्त्र पहनेन से साधु हो जाता है। दूसरे कहते हैं–काषाय नहीं श्वेत वस्त्र ठीक हैं। कई पीत वर्ण के वस्त्र मानते हैं तो दूसरे नीले वा लाल वस्त्र पहनना धर्म बतलातें हैं।

इसी प्रकार सिर के केशों का विचार है। एक मानते हैं– मुण्डित होना ठीक है, दूसरे कहते हैं, जटिल होना चाहिये। जटिल में भी सिध

ववरान हो, व पट्टीदार जटा हो अथवा बटी हुर्अ हो, इसका भेद माना जाता है। मुंटितों में भी कैसा मुंडन हो, इसके भी अनेक भेद हैं। इस मुंडन में भी धर्म का सम्बन्ध माना जाता है। इसी प्रकार तिलक को लें। तिलक किस वस्तु का लगाना चाहिये, उसका रंग श्वेत हो, काला हो, पीत हो। यह भी विवाद है। उसके पश्चात गोल हो, टेढ़ा हो, ऊंचा हा, इसका भी भेद है। इसी प्रकार धेती, तहमद, पजामा, पतलून में विवाद है। यदि कक्ष रहित हो, तो धर्म कृत्य मे ंउेस आज्ञा होगी कक्ष लगाओ। ओर दूसेर कक्ष सहित को कहेंगे कक्ष खोल दो। जो धोती की दशा है, यही पाजामा की अवस्थ है।

कई लोग माला पहनते है, उसमें भी विवाद है। माला किस चीज की हो। अर्थात् काष्ठ की हो। लोहे की हो, ऊनप की हो आदि–आदि। माला फेरने में भी झगड़ा है। कोई माला के मनके अन्दर से बाहर को डालता है और दूसरा बाहर से अन्दर को करता है। एक तर्जनी अंगुली लगा करक माला फेरने को धर्म के विरुद्ध बतलाता है, तो दूसरा तर्जनी का लगाना आवश्याक बतलाता है, तुलसी माला वाला रुद्राष वाले को भ्रष्ट मानता है, रुद्राक्ष वाला तुलसी की निन्दा करता है। सूत वाला लोहे की माला को तमोगुण की पदवी देता हैं तो लोहे वाला सूत से घृणा करता हैं इस प्राकर इन सब बातों में मतभेद है। यदि रुचि अनुसार, भेद होात तो कोई आपत्ति न थी। किन्तु जब इन को धर्म के साथ मिला दिया गया, तो यह सब बातें आपत्तिजनक हो जाती हैं।

धर्म प्रचारक व्यक्ति प्रायः इसका निषेध करते हैं किन्तु आश्चर्य है। कि उनके नाम लेवा भी ऐसे ही काम करते जाते हैं, जैसे दूसरे करते हैं। इसलिए सिद्धान्त तो मुन जी वाला ही ठीक है। 'न लिंग धर्म कारणम्।' अर्थात् बाहर के चिह्न (लिंग) किसी को धर्मात्मा नहीं बनाते, धर्माधर्म का सम्बन्ध वेष से नही है। आत्मा से है। अतः वेश्ज्ञ पर विशेश बल देने की आवश्यकता नही, सत्य, क्षमादि गुणों पर बल देना चाहिये।

आगे प्रथम ऋशि दयानन्द जी का पाठ, पुनः श्री आदि ग्रन्थ जी के शब्द, पश्चात् दसम ग्रन्थ का लखे लिखूंगा, ताकि पाठक जान लें कि इस वेष विषय में इनका मत क्या है।

1. कोई संसार में उसको दूशित वा भूषित करे, तो भी जिस किसी आश्रम में वर्तता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी सब प्राणियों मे ंपक्षपात रहित

होकर स्वयं धर्मात्मा ओर अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे और यह अपने मन में निंश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषाय वस्त्र आदि चिह्न धारण र्ध का कारण नहीं है, सब मनुष्य आदि प्राणियों के सत्यापदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है।

—सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ 80

2. ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ ओर संन्यासियों को योग्य है कि प्रयत्न से दस लक्षण युक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन करें—

1. धृति=सदा धैर्य रखना।

2. क्षमा= जो कि निन्दा, स्तुति, मानापमान, हानि—लाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहत्रना।

3. दम=मन को सदा धर्म मे प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे।

4 अस्तेय=चोरी त्याग अर्थात् बिना आज्ञा वा छल कपट, विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथ वेदविरुद्ध उपदेश से पर पदार्थ को ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना साहूकारी कहाती है।

5. शौच= रागद्वेष, पक्षपात छोड़के भीतर, और जलमृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी।

6. इन्द्रिय निग्रह=अर्थमाचरणों से रोक के इन्द्रियों को धर्म में ही सदा चलाना।

7. धीः=मादक द्रव्य, बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य प्रमाद आदि को छोड़के श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास से बुद्धि को बढ़ाना।

8.0 विद्या=पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, सत्य जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना विद्या, इसे विपरीत अविद्या है।

9. सत्य=जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना वैसा बोलना और वैसा ही करना भी।

10. अक्रोध=क्रोध ादि दोषों को छोड़के शांत्यादि गुणों को ग्रहण करना धर्म का लक्षण है।

इस दस लक्षण युक्त पक्षपात रहित न्यायाचरण धर्म का सेवन चारों

आश्रम वाले करें और इसी वेदोक्त धर्म ही में आप चलना और दूसरों को समझा कर चलाना संन्यासियों का विशेष धर्म है।

—सत्यार्थ प्रकाश पृ. 80—81

3. देखिये चक्रांकित वैष्णवों की अद्भुत माया—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मंत्रस्तथैवच।
अमी हि पंच संस्काराः परमैकान्त हेतवः।।

—रामापुज पटल

अर्थात् (तापः) शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिन्हों को अग्नि मे तपा के भुजा के मूल मे दाग देकर पश्चात् दुग्ध युक्त पात्र में बुझाते हैं और कोई उस दूध को पी भी लेते हैं। अब देखिये, प्रत्यक्ष ही मनुष्य के मांस का भी स्वाद उसमें आता होगा। ऐसे ऐसे कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं ओरकहते हैं, कि बिना शंख, चक्र आदि के शरीर तपाए जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह 'आमः' अर्थात् कच्चा है, ओर जैसे राज्य के चपरास आदि चिन्हों के होने से राजपुरुष जान उससे सब लोग डरते हैं। वैसे ही विष्णु के शंख, चक्रादि आयुधों के चिन्ह देखकर यमराज ओर उसके गण डरते हैं। और कहते हैं—

वाणा बड़ा दयाल का तिलक छाप और माल।
यम डरपे कालू कहे, भय माने भूपाल।।

अर्थात् भगवान् का वाना तिलक, छाप और माला धारण करना बड़ा है जिससे यमराज ओर राजा भी डरता है (पुण्ड्रम्) त्रिशूल के सदृश ललाट में चित्र निकालना (नाम) नारायणदास विष्णुदास अर्थात् दास शब्दांत नाम रखना (माला) कलम गट्टे की रखना(मंत्र) जैसे 'ओं नमो नारायणाय' यह उन्होंने साधारण जनो के लिये मंत्र बना रखा है .....

अग्नि ही में तपाना चकांकि स्वीकार करे, तो अपने अपने शरीर को भाड में झोंक के सब शरीर को जलावें, तो भी इस मंत्र के अर्थ से विरुद्ध है, क्योंकि इस मंत्र में सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिखा है।

—सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ 192, 193

4. कोई एक मनुष्य वृखके नीचे सोया था। सोता—सोता ही मर गया। ऊपर से काक ने विष्टा करदी। वह ललाट पर तिलकाकार हो गई थी। हां यम के दूत उसको लेने आये। इतने में विष्णु के दूत भी पहुंच गये।

दौनों विवाद करते थे, कि यह हमारे स्वामी की आज्ञा है, हम यमलोक में ले जायेंगे। विष्णु के दूतों ने कहा, कि हमारे स्वामी की आज्ञा है, बैकुण्ड में लें जाने की। देखो इसके ललाट में वैष्णव का तिलक है। तम कैसे ले `जाओगे। तब तो यम के दूत चुप होकर चले गये। विष्णु के दूत सुख`स उसको बैकुण्ठ में ले गये। नारायण ने उसको बैकुण्ठ में रखा।`दखो जब अकस्मात् तिलक बन जातने का ऐसा माहात्म्य है, तो जो अपनी प्रीति और हाथ से तिलक करते हैं, वे नरक से छू बैकुण्ठ में जावें, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

हम पूछते हैं, कि जब छोटे से तिलक के करने से बैकुण्ठ में जावें, तो सब मुख के ऊप लेपन करने वाला काला मुख करेन वा शरीर पर लेपन करने से बैकुण्ठ से भी आगे सिधार जाते हैं वा नहीं? इससे ये बातें सब व्यर्थ हैं।

अब इनमें बहुत से खाकी लकड़े की लंगोटी लगा, धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेश कर लेते हैं, बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं, गांजा, भांग , चरस के दम लगाते, लाल नेत्र कर रखते,ख सबसे चुटकी–चुटकी अन्न, पिसान कौड़ी पैसे मांगते गृहस्थों के लड़कों को बहका कर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उनमें होते है। कोई विद्या को पढ़ता हो, तो उसको पढ़ने नहीं देते, किन्तु कहते हैं, कि–

पठितव्यं तदपि मर्तव्यं दन्त कटाकटेति किं कर्तव्यम्।

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम, क्योकि विद्या पढ़ने वाले भी मर जाते हैं, फिर दन्त कटा कट क्यां करना? साधुओं को चार धम फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, राम जी का भजन करना।

जो किसी ने मूख्र अविद्या की मूर्ति न देखी हो, तो खाखी जी का दर्शन करक आवें। –सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ 226

5. खाखी, रात दिन लक्कड़, छाने (जंगली एरणे गोहे) जलाया करते हैं। एक महीने में कईरुपये की लकड़ी फूंक देते हैं। जो एक महीने की लकड़ी के मूल्य से कम्बलादि वस्त्र लेलें, तो शताश धन से ानन्द में हैं। उनको इतनी ुद्धि कहां से आवे? ओर अपना नाम उसी धूनी में तपने ही से तपस्वी धर रखा है। जो इस प्राकर तपस्वी हो सके, तो जंगली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी हो जावें। जो जटा बड़ाने, राख लगाने, तिलक करने से

तपस्वी हो जाय, तो सब कोई कर सके। –सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ 228

इस पुस्तक में इसी प्रकार पाखण्ड का खण्डन करक वेदोक्त सत्य धर्म का प्रकाश किया है। जिसको अधिक जानने की अभिलाषा हो उसे इस पुस्तक को स्वयं ढ़े का कष्ट करना चाहिये। आगे आदि श्री गुरु ग्रंथ जी के शब्द लिखूंगा।

1. बहु भेख कीआ देही दुःख दीआ। सुहुवे जीआ अपना कीआ।
–राग आसा वार महला 1 वार 9

2. भसम चड़ाइ करे पाखंहु। माइआ मोह सहे कि जम ढडु।
–राग रामकली अष्टपदियां महला 1 अष्ट. 2

3. भेखी हाा न लभई तीरथ नहीं दाने । पूछहु वेद पडंतिआं मुठी विणु माने। –मारू अष्टपदियां महला 1 अष्ब. 6

4. वारह महि रावल खपि जावहि चहु छिअ महि संनिआसि। जोगी कापड़ीआ सिरखु थे बन शवदे गल फासी।
–राग प्रभाती महला1 शब्द 16

5. इक वण खंड वैषहि जाइ सदुन देव ही।इक पाला ककर भंन सीतल जल हांवही। इक भसम चड़ावही अंग मैल न धोवही। इक जटा विकट विकराल कुल घर खावही। इक नगन फिरहि दिन राति नींद न सोवही। इक अगनि जलावहि अंगु आप विगोवही। विणु नावे तन छार क्या कहि रोवही। –मलार वार महला 1 वार 15

6. अखर पडि पड़ि भुलीऐ भेखी बहुत अभिमान। तीरथ नाता क्या करे मन मैल गुमान। गुरु बिन किन समझाइए मन राजा सुलतान।
–स्त्री राग अष्टपदियां महला 1। 12

7. काजी मुला होवहि सेख । जोगी जंगम भगवे भेख! को गिरही करमा की संधि। बिन बूझे सभ खडीअसि बंधि।
–राग वसन्त महला 1 शब्द 3

8. बहु भेख करहि मन सांति न होइ। बहु अभिमान अनी पति खोइ। से बडभागी जिन शवद पछाणिआ।बाहर जादा घर महि आणिआ।
–राग वसन्त महला 3 शब्द 11

9. रस कस खाए पिंड बधाए, भेख करे गुर शबद न कमाए, अन्तर रो महा दुःख भारी, विसटा माहि समाहा हे।

—मारु सोलहे महला 3 शब्द 14

10. जोगी होवा जग भवा घर घर भीखिआ लेउ। दरगह लेखा मंगिअै किसु किसु उत्तर देउ। भिखिआ नाम सोष मड़ी सदा सच है नाल। भेखी हाथ न लधीआ सभ बधी जम काल। नानक गला झूठीआ सचा नाम समाल। —मारु वार महला 3 वार 9

11. वहिले भेख भवहि दिन राती हउमैं मैल न जाई।

—राग भैरउ महला 3 शब्द 14

12. भेख करै बहुतु चितु डोलै अंतर काम करोध अहंकार। अंतर तिसा भूख अहि बहुती भउकत फिरै दरबार। —राग भैरउ महला 3 शब्द 18

13. भेख काहि बहु करम बिगुते भाइ दूजे परज विगोई।

—सलोक बारांते वधीक महला 3 सलोक 32

14. भगवे वेसि भ्रमि मुकति न होई। —वसन्त महला 3 शब्द 12

15. इकि कन्द मूल चुणि खाहि वणखण्ड वासा। इक भगवां वेसु कहि फिरहि जोगी संनिआसा। अंदर त्रिसा बहुत छादन भोजन की आसा। विरथा जनम गवाइन गिरहीन उदासा।

—माझ वार महला 1। महला 4 वार 5

16. भेख धारी तीरथी भव थके ना गृह मन मारिआ जाइ। गुरमुसि एह मन जीवत मरे सच रहे लिवलाइ। —सौरठ वार महला 4 वार 21

17. वाहर भेख बहुतु चतुराई मनुआ दहदिसि धावैं हऊ मैं विआ पिआ शबद न चीनै फिर फिर जूनि आवै। —राग सूही महला 4 शब्द 13

18. षट करम किरिआ कर बहु बहु विसथार, सिध साधिक जोगीआ कहि जट जटा जट जाट। करि भेख न पाइऐ हरि ब्रह्म जोग हरि पाइऐ सत संगती उपदेस गुरु गुर संत जना खोलि खोलि कपाट।

—राग कानडा महला 4 शब्द 10

19. भेख अनक अगनि नहीं बुझे। कोटि उपाव दरगह नही ंसिझे।

—गौड़ी सुखमनि महला 5 अष्टपदि 3

20. भेख दिखवै सच न कमावै। कहतो महली निकट न आवै।

—सूही महला 5 शब्द 7

21. वेद पुकारै मुखते पंडित कामा मन का माठा। मोनी होइ बैठा इकाती हिरदे कलपन गाठा। होइ उदासी ग्रिह तज चलिओ दुटके नाही

ठाठा।1। जीअ की कै पहि वात वात कहा। आप मुकत मोकउ प्रभ मेले ऐसो कहा सहा। रहाउ। तपसी करिके देही साधी मनुआ दहदिस धाना। ब्रह्मचारी बह्मचजु कीना हिरदे भइआ गुाना। संनिआसी होइके तीरथ भ्रमिो उस मह क्रोध विगाना। 2 घूंघर बांध भाए रामदासा रोटीअन के उपावा। वरत नेम करम पट कीने वाहर भेख दिखावा। गीत नाद मखि राग अलापै मन नहीं हरि हरि गाया। 3। हरष सोग लोभ माह रहित हहि निरमल हरि के संता। ताकी घूड़ पाइ मन मेरा जा दइआ करे भगवंता।

—मारू महला 5 शब्द 15

22. भेखी प्रभ न पाइए बिना सची सिखं।

—मारू वार महला 5 डखणे शब्द 13

23. मन महि क्रोध महा अहंकारा। पूजा करहु बहुत विसथारा। करि इसनान तन चक्र वणाए। अन्तर की मलु कब ही न जाए। 1। इत संजम प्रभ किनही न पाइआ। भगउती मुद्रा मन मोहिआ माइआ। रहाउ। पाप करहि पंचा के वसर। तीरथ नहाइ कहहि सभ उतरे। वहिर कमावे होइ निसंक। जमपुर बांध खरे कालंक। 2। घूंघर वांधि बजावहि ताला। अंतर कपट फिरहि बेताला। वरमी मारी साप न मृआ। प्रभु सब किटु जाने जिन तू कीआ 3। पूअर ताप गेरी के वसत्रा। अपदा का मारिआ ग्रिह ते नसता। देस छोडित्र परदेसहि धाइआ। पंच चंडाल नाले लै आइआ। 4। कान फराई हिराए टूका। घर घर मांगे त्रिपतावन ते चूका। वनिता छोडि वद नदरि पर नारी। वेसु न पाइऐ महादुखिआरी। 5। बोले नाही होइ बैठा मोनी। अंतर कलप भवाइए जोनी। अन्न ते रहिता दुःख देही सहितां हुकम न बूझे विआपिआ ममता। 6 विन सतगुरु किने न पाई परम गते। पूछहु सगल वेद सिम्रिते। मन मुखि करम करे अजाई। जिउ बाल घर ठउर न ठाई। 7।

—विभास प्रभाती महला 5 अष्टपआिं अष्ट. 2

24. मन रे गहियो न गुर उपदेस। कहा भइओ जे मूंड मंडाइो भगवो कीनो भेस। —सोरठ महला 9 शब्द 10

25. गज साढै तैतै धोतीआं तिहरे पाइन तग। गली जिना जप मालिआं लोटे हथ निवग। ओइ हरि के संत न आखीअहि वानारसि के ठग।1। एसे संतन मो कउ भवहि। डाला सि पेडा गटका वहि। 1। रहाउ। वासन मांजि चरावहि ऊपरी काठी धोइ जलावहि। वसुधा खोदि करहि दुई

चूल्हे सारे माणस खावहि। 2। ओइ पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि। सदा सदा फिरहि अभिमानी सकल कुटव डुवावहि।

—राग आसा कबीर जी शब्द 2

26. अंतर मलि निरमल नही कीना बाहर भेष उदासी। हिरदे कमले घटि ब्रह्म न चीन्हा काहे भइआ संनिआसी। 1। भरमे भूली रे जैचंदा। नहीं नहीं चीनिआ परमानंदा। 1। रहाउ। घर घर खाइआ पिंड बधाइआ खिंथ मुंदा माइआ। भूमि मसाण की भसम लगाई गुरु विन तत न पाइआ। 2 काई जपहु रे काइ तपहुरे काइ विलोवहिु पानी। लख चुरासी जिनी उपाइ सो सिमरहु निरवाणी। 3 । काइ कमंडलु कापडीआरे अठ सठ काइ फिराही । वदति त्रिलोचन सुन रे प्राणी कण विनु गाहुहि पाही। 4।

—राग गुजरी त्रिलोचन शब्द 1

27. फरीदा कंन मुसला सूफ गल दिल काती गुड वाति। बाहर दिसै चानण दिल अंधिआरी राति। —फरीद सलोक 50

यह शब्द आदि गुरु ग्रंथ जी के हैं। आगे पाठ दसम ग्रन्थ जी का है :—

तव हरि बहुर दत्त उपजायो तिन भी अपना पंथ चालायो।
करमो नख सिख जटा सवारी। प्रभु की क्रिआ न कदु विचारि।23
प्रन हरि रामा नन्द कउ करा। भेस वैराग को जिन धरा।
कण्ठी कण्ठ काठ की डारी। प्रभु की क्रिआ न कदु विचारी। 25
जे प्रभु परम पुरुष उपजाएंतिन तिन अपुने राह चलाए।
महादीन तब प्रभ उपराजा। अरब देस को कीनो राजा। 26
तिनि भी एक पन्थ उपराजा। लिंग बिना कीने सभ राजा।
सभ त अपुना नाम जपायो। सत नाम काहू न दृड़ायो। 27

रसावल—भ जटा मूंड धारों। न मुद्र का सवारों। न नैनं मिचाऊं। न डिंभ दिखाऊं। न कुकरमं कमाऊं। न भेखी कहाऊं। 52

चौपाई—जो जो भेख सु तन मे धारे। ते प्रभ जन कुछ कै न विचारे। समझ लेहु सभ जन मन मांही डिंभन में परमेसर नाहीं। 53 जे जे करम कर डिंभ दिखाहीं। तिन परलोकन में गति नाहीं। जीवत चलत जगत के काजा। स्वांग देख कर पूजत राजा। 54। स्वांगन में परमेसर नाहीं। खोज फिरे सभ ही के काही। अपुनो मन करमों जिह आना। परी ब्रह्म को तिनी

पछाना। 55

दोहा—भेख दिखाए जगत को लोगन को वस कीन। अन्त काल काति कटिओ वास नरक में ली। 56।। जे जे जग को डिंभ दिखावै। लोगन मूंड अधिक सुख पावै। नासा मूंद करे प्रणाम। फोकट धरम न कोड़ी कामं। 57।। फोकट धरम जिते जग करही। नरक कुंड भीतर ते परही। हाथ हलाए सुरग न जाहू। जो मन जीत सका नहीं काहू। 58।।

—विचित्र नाकट अध्याय 6

सवैया—

धिआन लगाई ठगिओ सभ लोगन, सीस जटा नख हाथ बढाए।
लाइ विभूति फिरिआ मुखि ऊपर, देव अदेव सभे डहकाए।
लोभ के लागे फिरियोघर ही घर, जाग के नियास सभे विराएं
लाज गई कुछ काज सरियो नहि, प्रेम बिना प्रभ पान न आए।
काहे कउ डिंभ करे मन मूरख, डिंभ करे अपनी पतरब्बे हैं
काहे कउ लोग ठगे ठग लोगन, लोग गयो परलोक ग्वे है।
दीन दयान की ठउर जहां तिह ठउर विषे तुहि ठउर नऐ है।
चेत रे चेत चेत महाजड़, भेखक कीने अलेख न पै है। 19
आंखन भीतर तेल को डार, सुलागन नीर बहाइ दिखावै।
जे धन हीन लखे तिन देत न, मांगन जात मुखे न दिखावै।
लूटत है पसू लोगन को, बहूं न परमेसर के गुन गावै। 30
आंखन मीच रहे वक की जिम, लोगन एक प्रपंच दिखायो।
नियात फिरियो सिर वधक ज्यों असि धिआन विलोकविलाव लजायो।
लाग फिरियो धन आस जिते, तित लोग गयो परलोक गवाये।
स्त्री भगवत भजियो न अजे जड़ धाम के काम कहां उरझायो।31

—सवैये पातशाही 10

इक मडीअन कवरन वे जाहि। दूहुअन में परमेसर नाही। 18
इक तसवी इक माला घर की। एक कुरान पुरान उचर ही। 20
जोगी संनिआसी है जेते। मुंडीआ मुसलमान गन केते।
भेख धरे लूत संसारा। छपत साध जिह नाम अधारा। 23
पेद हेत नर डिंभ दिखांही। डिंभ करे विन पाइयत नांही।
नित नर एक पुरुष कह धिआयो। तिन कर डिभ न किसी दिखायो। 24

—चौबीस अउतार

इस प्रकार वेष आदि पाखण्ड का सबने खण्डन किया है। परन्तु उन वेषों का विवाद अद्यपर्यन्त समाप्त नही हुआ। साधारण प्रजा कागे छोड़ दो, धर्म धुरन्धर, नेता लोग भी वेश आदि पर बल देते हैं सत्य, क्षमा, संतोष, धर्म परायणता पर बल नहीं देते हैं। यह बात चिंतनीय हे। भगवान् सबको सुबुद्धि दे।

— + —

22.

सत्यार्थ—प्रकाश का पाठ

सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में ऋषि दयानन्द जी ने भारत के उन मतों पर विचार प्रगट किये हैं। जिन पंथों का सम्बन्ध वेद से है। वह वेद की संस्कृति मानते हैं। उन संप्रदायों में ऋशि ने सिख पंथ को भी लिया है। और उस प्रकरण में श्री गुरुग्रंथ साहिब जी का पाइ भी उद्धृत किया है। उसी पाठ पर इस शीर्षक में विचार करना है। इसीलिये इसका नाम यह लिखा है।

सत्यार्थ प्रकाश में यह पाठ हैं—

1. 'ओं सतयनाम कर्त्ता पुरुष निभौं निर्वैर अकाल मूर्त अजोनि सहभं गुरुप्रसाद जप, आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच।

—जपुजी पौड़ी 1

2. वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारो वेद कहानि।
सन्त (साध) कि महिमा वेद ना जाने।

—सुखमनी पौड़ी 7 चो. 8

3. नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर। —सु. पौड़ी 8। चौ. 6

यदि इस पाठ कोउसी रूप में लिखना हो, मात्रादि का भेद न करना हो, तो यह पाठ इस प्रकार होगा—

1. 1 ओ सति नाम करता पुरुष निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनि सैभं गुर प्रसादी जपु। आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु। —जपुजी पौड़ी 1

2. वेद पड़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि (यह पाठ इस प्रकार नही है) साध की महिमा वेद न जानहि। —सुखमनी अष्टपदी 7 पाद 8

3. नानक ब्रह्मगिआनी आप परमेसुर।

—सुखमनी अष्टपदी 8 पाद 6

यदि इस पाठ में मात्राओं को देखा जाय तो महान् अन्तर है यथा—

1. ओ को ओं।

सति को सत्य। करता को कर्त्ता।

अजूनी को अजोनी सेभं का सहभं।

निरभउ को निर्भौ निरवैर को निर्वैर।

मूरति के मूर्त प्रसादि को प्रसाद।

जपु को जप। सचु को सच।

आदि अनेक भेद हैं। इसका कारण यह है।

ऋशि स्वयं गुरु+गुखी पढ़े हुए न थे और उन्हांने गुरु ग्रन्थ जी का पाठ भी न किया था। किसी ने उनकोग बताया था। उसे सुन उन्होंने लिख लिया, वही सत्यार्थ प्रकाश में लिख दिया है। इसमें मुख्य भेद ओं ओर 1 ओ का है। सिख पंथ मे ंयह 1 ओ ही लिखा जाता है, इसके अर्थ ओं के अर्थों के समान ही है। इस कारण अर्थ भेद नहीं। संस्कृत वाले ओं के पहले 1 का अंक नहीं लिखते हैं। इस कारण ऋशि ने भी न लिखा।

अब रहा मात्रओं का भेद। श्री गुरु ग्रन्थ जी में अक्षरों पर जो मात्राएं है, उनका पूर्ण ध्यान पाइ में भी नही किया जाता। उन मात्रओं को नियम पूर्वक उच्चारण न करे उस शब्द का साधारण उच्चारण किया जाता है। गुरुमुखी मे ेरेफ, संयुक्त अक्षर न होने से पाठ भेद हो जाता है।

इसी प्रकार लिखने में सिख भी इन मात्रओं को पूरा पूरा न लिखकर साधारण रूप से लिखते हैं। यथा—

सोरठ रवदास। जउ तुम चंद हम भए हैं चकोरा।

गुरमत प्रभाकर भाई कान्ह सिंघ जी। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में –रवदास' की जगह 'रविदास' पाठ है ओर 'हैं' के स्थान पर 'है' पाठ है। इसी प्राकर ओर लेखकों के पाठ भी हैं।

इन पाठों में विशेष चिंतनीय 'वेद पढ़त ब्रह्मा मरे, चारो वेद कहान' का पाठ है। क्योंकि यह पाठ श्री गुरुग्रंथ साहिब जी में नही है।

इसका समाधान इस प्रकार है—

1. जिस भांति 'करे करावे आपे आप। मानुशके कुद नाहीं हाथ।' यह पाठ प्रायः पढ़ा जाता है। प्रचलित है किन्तु श्री गुरु ग्रंथ जी में यह पाठ भी नहीं है। इसी प्रकार 'वेद पढ़त ब्रह्मा मरे, चारो वेद कहानि' पाठ प्रचलित है श्री गरु ग्रन्थ साहिब जी में नहीं। प्रचलित होने से किसी ने कहा ओर ऋशि ने सुन कर लिख दिया।

2. श्री गुरु ग्रंथ जी में यह पाठ आनुपूर्वी यप में नहीं है। किन्तु इस भाव के शब्द मिलते हैं। इस पाठ के दो भाग बना लिये जायें। एक वेद पढ़त ब्रह्मा मरे।' दूसरा 'चारों वेद कहानि'। इन भागों का भाव कहने वाले शब्दयह हैं यथा—

क. नाभि कमलते ब्रह्मा उपजे वेद पड़हि मुखि कंठ सवार।

ताको अन्त न जाई लखण आवत जात रहे गुवार।

—गुजरी महला 1 एक शब्द 2

ख. चारे वेद ब्रह्मे कउ दीए पहिड पड़िऋ करे वीचारि।

ताका हुकम बूझे वपुड़ा नकर सुरग अवतारी।

—आसा महला 3 अष्टपदियां। अष्ट पदि 23

ग. सनक सननन्द अंत नहीं पाइआ। वेद पड़े पड़ि ब्रह्मे जनम गवाइया। —राग आसा कबीर जी शब्द 10

वेद पढत ब्रह्म मरे और 'वेद पड़े पडि ब्रह्मे जनम गवाइआ तथ नकर गुरग अवतारी, और आवत जात रहे गुवार में शब्द भेदहोते हुए भी भाव भेद नहीं है।

दूसरा पाठ है 'चारों वेद कहानि'। इस भाव का शब्द यह है वे कतेव इफतरा भाई दिल का फिकर न जाइ।' तिलंग कबीर जी श. 1। इस पाठ मे ंवेद को इफतरा कहा है। इफतरा का अर्थ बुहतान है। जैसे कि भाई कान्हासिंह जी ने लिखा है। वेद कतेब इफतरा भाई दिन का फिकर न जाइ।

कफतरा। कपोल कल्पना। गुरमत प्रभकर पृष्ठ 648

पंडित तारासिंह जी ने लिखा है—

इफता। अ.। 'बहुतान' हकाव, यथा 'वेद कतेव इफतरा भाई दिल का फिकर न जाइ। सामादि चारों वेद और अजील आदिक कितावां परस्पर विरुद्ध वचनों से संदेह करने वाली है। जांते पूरे गरों के उपदेस बिना इनसे चि का संदेह जाना कठिन है। —गुरुगिरार्थ कोष पृष्ठ 116

लुगात सईदी। इफतरा,बुहतान।

इस प्रकार वेद पढ़त ब्रह्मा मरे और चारो वेद कहानि का भाव इन शब्दों में है और उस प्राकर का पाठ श्री गुरु ग्रंथ जी में नहीं है यह निश्चय हैं

3. कई सज्जन इस प्रश्न कोइस रूप में कहते हैं। जब निश्चय है कि यह पाठ श्री गुरु ग्रंथ साहिब ज में नहीं है। तब इस पाठ को सत्यार्थ प्रकाश से निकाल ही देना चाहिये।

जो सज्जन पाठ निकाने की बात कहते हैं। आगे मैं इस पर विस्तार से विचार करना चाहता हूं, ताकि मेरी भावना को पाठक ठीक–ठीक समझ लें। इस पर प्रथम उत्तर तो यह है–

सत्यार्थ प्रकाश के लेखक ऋषि दयानन्द जी हैं।उनका स्वर्गारोहण हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गए हैं। उनके जीवन–काल में यदि कोईउनको यह बात बतलाता, तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि वह इस पाठ को अवश्य ही निकाल देते। वह चाहते तो कोई और पाठ लिख देते, अथवा कुछ भी न लिखते, क्यांकि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है ''इस ग्रन्थ में जो कहीं कहीं भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय, उसको जानने जनाने पर जैसा यह सत्य होगा, वेसा ही कर दिया जायगा।''

इसलिये उस समय यह ठीक हो सकता था। अब किसी को भी इसमें परिवर्तन का अधिकार नहीं है। लेखक स्वयं बदलना चाहे तो बदल सकता है। दूसरे को बदलने का अधिकार न होने से अब इस पाठ का निकाल देना असम्भव है। अधिक से अधिक यही हो सकता है कि इस पाठ के नीचे टिप्पणी दी जाय। उसमें लिखा जाय कि यह पाठ इस रूप में ग्रंथ साहिब जी मे ंनहीं है। और उस भाव के जो शब्द ऊपर लिखे हैं, वह भी लिख दिये जायें।

इसमें एक यह लाभ भी है। पाठक यह भी समझ सकेंगे, कि भूल सबसे होती है। ऋशि दयानन्द जी ने भी यह भूल से ही लिखा है।

यदि ऐसा होने पर भी वह सज्जन संतुष्ट न हों, ओर यही बल दें,? कि जब यह पंक्ति श्री गुरुग्रंथ साहिब ने नहीं है, यह निर्विवाद है और सत्यार्थ प्रकाश में यह पाठ गुरुग्रंथ जी के नाम से लिखा है, तो इसे निकाल देना ही चाहिये।

इसका उत्तर मैं यह दूंगा।

जो पाठ किसी ने लिखा है, और वह ठीक नहीं है। उस धर्म ग्रन्थ से वह पाठ निकाल दिया जाय। यह व्यवस्था सत्यार्थ प्रकाशके लिये ही

है, वा अन्य ग्रन्थों के लिये भी है। यदि प्रथम पक्ष माना जाय, कि सत्यार्थ प्रकाश केलिये ही है। तो यह कोई न्याय नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश से पाठ निकाला जाय, अन्य पुस्तकों से न निकाला जाय, इसमे कोई यक्ति नहीं, कि यह क्यों किया जाय।

यदि दूसरा पक्ष माना जाय, कि हां यदि कोई पाठ ठीक न हो तो सब ग्रन्थों से निकाल देना चाहिये, यह पक्ष न्याय युक्त तो है। किन्तु कठिनाई यह है कि उस धर्म ग्रन्थ के मानने वाले इसमें सहमत होंगे? मेरी सम्मति में कोई भी सहमत न होगा। उदाहरण के लिये मैं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के पाठ ही लिखता हूं–

गैंडा मारि होम जग कीए देवतिआं की वाणे।

–राग मलार वार महला 1 वार 25

देवताो का स्वभाव है कि वह गैडा मार कर हवन करते हैं। अजामेध, गोमेध, यज्ञ हैं। ऋषि दयानन्द जी ने इनके अर्थ ठीक–ठीक किये हैं अश्व राष्ट्र को कहते हैं, उसका उत्तम प्रबन्ध ही अश्वमेध है। गो नाम अन्न का है, उत्त्मा ओर अधिक अन्न उत्पन्न करना ही गोमेध ह। अजामेघ पर उन्होनें नहीं लिखा, परन्तु लखे हैं अजा के अर्थ पुराना अन्न है। यह अथ छोड़कर भी, इन पशुओं अजा, अश्व, गो, का मारना तो है गैंडे मारने वाला कोई यज्ञ नहीं है। यज्ञों का वर्णन करने वाले शत पथादि ब्राह्मण ग्रन्थ और कात्यायनादि श्रौत सूत्र है।। उनमें किसी ने भी गैंडे का यज्ञ नहीं लिखा है। यदि कोई दिखाने का कष्ट करे, तो मुझे अति प्रसन्नता होगी।

क्या इस पाठ को निकाला जाय?

दूसरा पाठ हरणखसु वाला है वह इस प्रकार है–

1. दुरमति हरणाखस दुराचारी। प्रभु नाराइण गरव प्रहारी। प्रहलाद उधारे कृपा धारी। –गौड़ी अष्टपदियां महला 1 अष्टपति 9

2. निंदा दुसरी ते किन फल पाइआ हरणाखसु नखहि विदारे।
प्रहलाद जन सद हरि गुण गावै हरि ीउ लए उवारे।

–सोरठ महला 3 शब्द 5

3. भगतां दा सदा तूं रखदा हरि जीउ धुरि तू रखदा आइआ
प्रहलाद जनु तघु राखि लए हरि जीउ हरणाखसु मारि पचाइया।

–सोरठ महला 3 घर1 तितुकी शब्द 1

4. मेरी पाटीआ लिखहु हरि गोविन्द गोपाला।

दूजे भाइ फाथे जमजाला। सति गुरफरे मेरी प्रतिपाला।

हरि सुख दाता मेरे नाल ।1।

गुर उपदेसि प्रहलाद हरि उचरै।

सासना ते बालक गमु न करे। 1। रहाउ।

माता उपदेसै प्रीाद पिआरे। पुत्र राम ना छोड़हु जीउ लेहु उवारे। प्रहलाद कहे सुनहु मेरी माइ। राम नाम न छोड़ा गुरि दिआ बुझाइ। 2।

संडा मरका सभि जाइ पुकारे। प्रहलाद आप बिगडिआ सभ चाटड़े बिगाडे। दुस सभा महि मन्त्र पकाइा। प्रहलाद का राखा होइ रघुराइआ।। 3।।

हाथ खडग कहि धाइआ ति अहकारि। हरि तेरा कहा तुध लए उवारि। खिन महि भैआन रूप निकसिआ थंम उपाड़ि।

हरणाखुसु नखी विदारिया प्रहलाद लीआ उवारि।। 4।।

रंत जना के हरि जीउ कारज सवारे। प्रलाद जन के इकीह कुल उधारे। राक भैरउ महला 3 शब्द 20

5. तिनि करते इक चलतु उपाइआ। अनहदवाणी शबद सुणाइआ। मनुमुखि भुले गुरुमसि बुणइआ। कारण करता करदा आइआ ।1।

गुर का शबद मेरे अन्तरधिआन। हउ कबहु न छोडउ हरि का नामं 1 रहाउ।

पिता प्रहजलाद पड़ण पठाइआ। ले पाटी पाो के आइआ।

नाम बिना नहिं पड़हु अचार। मेरी पटीआ लिख देहु गोविंद मुरारि ।2।

पुत्र प्रहलाद सिउ कहिआ माइ। परविरति नपडहु रही समझाइ। निरभउ दाता हरि जीउ मेरे नालि। जोहरि छोड़उ तउ कुल लागे गालि। 3।

प्रहलाद सभ चाटड़े बिगारे। हमार हिआ न सुण आपणो कारज सवारे। सभ नगरि महि भगति दृड़ाई। दुसट सभा का किछु न बसाई। 4।

संडे मरके कीई पुकार। सभै दैत रहे झखमारि। भगत जना की पति राखे सोई। कीते कैं कहिए क्या होई। 5

किरत संजोगी देत राज चलाइआ। हरि न बुझ तिन आप भुलाइआ।

पुत्र प्रहलाद सिउ वाद रचाइआ। अन्ध न बूझे काल नेड़े आइआ। 6।

प्रहलाद कोठे विचि रख्आि वारि दिआ ताला। निरभउ बालक मूल न डरइ मेरे अन्तर गुर गोपाला। कीता होवे सरीकी करे अनहोदा नाउ धराइआ। जो धुरि लिखिआ सो आइ पहुता जन सिउ वाद रचाइआ। 7।

पिता प्रहलाद सिउ गुरज उठाई। कहा तुमार जगदीस गुसाई। जगजीवन दाता अन्ति सखाई। जहि देखा तहि रहिआ समाई। 8।

थमु उपाड़ि हरि आप दिखाइआ। अहंकारी देत मार पचाहआ। भगता मनि आनन्द बजी बाधाई। अपने सेवक कउ देविडिआई। 9। जंमण मरण मोह उपाइआ। आवण जाणा करते लिखि पाइआ। प्रहलाद के कारज हरि आप दिखाइआ। भगता का बोल आगै आइआ ।10। देव कुली अखमी कउ करिहि जैकार। माता नरसिंघ का रूप निवार। लखमी भउ करै न साकै जाइ। पहलाद जनुचरणी लागा आइ। 11। भगता का अंगीकार करदा आइआ। करतै आपणा रूप दिखाइआ। 13। 'भैरउ महला 3 शब्द 1

6. पाधरी छद–इह भांत जग दोही फिराइ। जलं वा थलीयं हिरनाछराइ। 2। प्रहालद भगत लीनोवतार। सुभ करन काज संतन उधार। चसार पढ़न सौपिओ नृपाल। पटयहि कहिओ लिखदै गुपाल। 4।

तोटक–इक दिवस गयो चटसार नृपं। चित चौप रहियो सभ देख सुतं। जु पढ़ियों दिजते सुन ताहि रड़ियो। निरभै सिस नाम गपल पढ़ियो। 5। सुन नाम गपला रिसियो असुरं। बिन मोहि सो कोनप भजो दुसरं। दिज याहि धरो मिस आन इनी। मनं। इह कयहि गुपाल को नाम भनं। तब ही इह बांधत थंम भए। सुन स्रवनन दापव वैन धए। 7। गहि मूड़ चले सिस मारन को। निकसि ओ जगुपाल उवारन को। चक चोप रहे जन देख सबै। निकसियाये हरि फारी कवार जवै ।8। लख देव दिवार सबै थहरे। अविलोक चराचर हूं हरि रे। गरजे नर सिंघन रात करं। दृग रत कीयो मुख सोण भरं9। लख दानव भाज चले सब ही गरजियो नर सिंघ रणं जब ही। इक भूपति ठाढ रहियो रण में। गहि हाथ गदा निभै मन में 10। लरजे सब सूपूपं गरजे। मसुहाथ भए भट केहर के।......11.....

चौपाई–त्याग चले रण को सब बीरा। लाज विसरगी भए अधीरा।

हिरनाछस तब आप रिसाना। बांध चलियो रण को करगाना।28

भरियो रोस नरसिंघ सरूपं। आयत देखि सुमहिरण भूपं।

निज धावन को रोस न माना। देख सेवकहि दु:,खी रिसाना। 29।

भुजंग प्रयात मचियो दुंद जुधं मचे दुऐ जुआणं।

तडंकार तेगं कडक्के कमाणं।

फिरियो कम्प कै दानवं सुलताणं।

हडं स्रोण चले मधि मुल्लाताणं। 31।

फिरयियो सिंघ सूरं करूरं करालं।

कंपर्इा सटा पूद फेरी विसालं। 33।

दोहरा— गरजत रण नरसिंघ के भज्जे सूर अनेक।

एक टिकियो हिरनाछ तह अवरन योद्धा एक। 34

चौपाई—मुसट युद्ध जुटे भट दोऊ तीसर ताहि न पिखियत कोऊ।

भए दुहन के राते नेण। देखत देव तमासे गैणा। 35

असट दिवस असट निस जुद्धा। कीनो दुहन भन मिल क्रुद्धा।

बहुरो असुर कछुक मुरझाना। गिरियो भूमि जन कुछ पुराना। 36

सींच वार पुन ताहि जगायो। छुटे मूरछा पुनि जी जीया आयो।

वहुरो भए सूर दो क्रुद्धा। मंडियो बहुर आप महि जुद्धा। 37

भुजंगप्रयात—हलाचाल कै के पुनर वीर ढूके। मचियो जुद्ध जिउ करण संगं धड़के। नखं पात दोऊ करे दंत धाते। मनो गज्ज जुटटे। बनं मसत माते। 38। पुनर नारसिंध धरा ताहि मारियों पुरानो पलासी मनो वाइ डारयो। हनयो देख दुसटं भई पुरुष वरषं। कीयो देवतियों आन के जीत करषं। 39।

पाधरीछन्द— कीनो नरसिंघ दुसटं संधार। धरयो विसनू सपतमवतार।

लिंनो सु भगत अनो छिनाइ सब सृषि धरम करम न चलाइ। 40

प्रहलाद करयो नृप छत्र फेर। कीनो संधार सब इम अंधेर।

सब दुष्टारिष्ट दिंने खपई। पुन लई जोति जोतहि मिलाइ। 41

—दसम ग्रंथ अवतार वर्णन, नसिंघावतार

इस पाठ का संक्षेप से भव यह है—हिरण्याक्ष नाम का एक राक्षस था जो ईश्वर को नहीं मानता था। उसके गृह में पुत्र रत्न हुआ, उनका नमा प्रहाद रख गया। यह ईश्वर भक्त था। इसे चटशाला में पढ़ने भेजा, वहां भी ईश्वर का नाम ही लिखता, पढ़ता था, पिता को पता लगा, वह रुष्ट हुआ, प्रहलाद को थंम से बांधा गया। प्रहलाद की रक्षा के लिए भगवन् नरसिंह

रूप में प्रगट हुए। उसका रिण्याक्ष से युद्ध हुाअ। नरसिंघ ने हिरण्याक्ष को मार दिया और उसके स्थान पर प्रहलाद को राज्य तिलक करके राजा बना या। गया। प्रहला के 21 कुलों का उद्धार हुआ।

सार यह, कि प्रहलाद की रक्षा के लिए नरसिंह अवतार हुए। उन्होंने हिरणक्ष को मारा।

यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। पुराणों में नरसिंह अवतार का भी उल्लेख है। हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु दो भ्राता थे। दोनों ने देवों को दु: ख दिया था, दोनो के मारने के लिए भगवान् के दो अवतार हुए थे। एक वाराह, दूसरा नरसिंह। दोनों अवतारों ने दोनों राक्षसों को मारा था। यह निर्विवाद हैं पंउित तारासिं जी ने गुरु गिरार्थ कोष में लिखा है—

हिरणाखस। दे प्रहलाद के पिता का भाई राखस, प्रहलाद के पिता का नाम हिरणकशिपु था। हिरण सुवरण जैसी बंसती रंग की विलीआं अखां वाला मन के नाम हिरणाख्य रखा, रिण सुवरण की सेहजा वाला जाणके नाम हिरण्यकशिपु है। कशिपु सेहजा का नाम है।

सत्यार्थ प्रकाश के 213 पृष पर लिखा है—

''पुनः वे हिरणयाक्ष ओर हिरण्यकश्यपु, उत्पन्न हुए। उनमें से हिरण्याक्ष को बराह ने मारा।.....

अब रहा हिरण्याकश्यप उसका लड़का जो प्रहलाद थाः वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ाने को पाठशाला में भेजता था। तब वह अध यापकों से कहता था, कि मेरी पट्टी में राम राम लिख देओं जब उकसे बाप ने सुना, उससे कहा तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है? छाकरे ने न माना। तब उसके बाप न उकसो बांध के पहाड़ से गिराया, कूप में डाला, परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खम्भ आगी में तपाके, उससे बोला, जो तेरा इष्ट देव राम सच्चाह, तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा। प्रहलाद पकड़ने को चला। मन मं शंका हुई, जलने से बचूंगा वा नहीं? नाराण ने उस खम्भे पर छोटी छोटी चीटियों की पंक्ति चलाइ। उसको निश्चय हुआ, झट खम्भे को जा पकड़ा वह फट गया, उसमें से नृहिंस निकला, ओर उसके बाप को पकड़ पेट को फाड़ डाला। पश्चात् प्रहलाद को लाड से चाटने लगा। प्रहलाद से कहा वर मांग। उसने अपने पिता को सद्गति होनी मांगी। नृसिंह ने वर दिया कि तरे इक्कीस पुरुषे

सद् गति को गये।''

यह भागवत पुराण की कथा है। यह लिखकर ऋशि ने आगे इसकी समालोचना की है। यह समालोचना वहां की पढ़े।

पंडित तारासिंह जी ओर ऋशि दयानन्द जी का मत है, कि प्रहलाद के पिता का नाम हिरण्याक्ष नहीं था। उसका ना कहरणकश्यपु थाि और ऐसा ही पुराण में है। नृसिंहावतार ने प्रहलाद के पिता को मारा था इसलिये नृसिंह ने रिण्यकश्यपु को मारा था, हिरण्याक्ष को नहीं।

आदि श्री गुरु ग्रन्थ जी तथा दसम गुरु ग्रन्थजी में नृसिंह द्वारा हिरण्याक्ष का मारना जो लिखा है। वह किसी पुराण में नहीं है और ठीक भी नहीं है।

अब यदि कोई कहे कि यह दोनों, 'गैंडे मार होम जगकीए, हरणाखस नखहि विदारे'' पाठ श्री गुरु ग्रंथ ही से निकाल दिये जायें, अथवा इन पाठों को बदल दियाा जाय। तो इस बात को कोई भी न मानेगा क्योंकि रामराय जी ने ''मिटी मुसलमान की'' के स्थान पर दिल्ली में 'मिटी बेइमान की' पाठ बदला था, गुरु हरराय जी ने उनको गद्दी से पृथक् कर दिया। ओर गुरु गोविन्द सिह जी ने सिख दीक्षा आरम्भ की उस दीक्षा में अब तक हिा जाता है—राम राइयों के साथ सिख वरूवहार न करें अर्थात् उनसे रोटी बेटी का समबनघ न करें। औरा भाई मनिसिंह जी ने पाठ नही ंकुछ क्रम बदला था। उसे शाप दिया गया कि तूने गुरु देह का अंग—भंग यिकाह ै।अतः आपके भी अंग—अंग काटे जायेंगे। उसके अंग अंग काट गए।

इन ऐतिहासिक घटनाओं के होते हएु न तो कोई व्यक्ति कही सकता है कि इस प्रकार के पाठों में सुधार किया जाय और न ी यह बात हो सकती है। अर्थात् यह असम्भव है।

जैसे री गुरु ग्रंथ जी के पाठ बदलने का किसी को अधिकार नहीं है। इसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश का पाठ 'वेद पढत ब्रह्मा मरे चारो वेद कहानि' के बदलने का भी किसी को अधिकार नहीं है। और यह भी निर्णीत है, कि यह पाठ क्रमशः इसी भांति श्री गुरु ग्रन्थ जी में नहीं है। ओर इस भाव का दूसरा पाठ है, जैसाकि मैंने पहले लिखा है।

सत्यार्थ प्रकाश के पाठ विषय मे जो मै। ठीक समझता हूं ओर

आर्य समाज का सिद्धान्त है, वह मैंने लिख दिया है, पाठक इस पर विचार करके निश्चय करलें।

अन्य सिद्धान्तों पर भी मैंने सत्यार्थ पकाश ओर श्री गुरु ग्रंथ जी के पाठ लिख दिये हैं, ताकि पाठकों को समझने में सुचिधा हो। इतना लिखकर पुस्तक समाप्त करता हूं और आशा करता हूं कि इससे सिद्धान्त ज्ञान में पाठकों को सहायता मिलेगी।

— + —